चन्दामामा
माँ-बच्चों का मासिक पत्र

Photo by S. G. Pradhan

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

आता है याद मुझको
गुज़रा हुआ ज़माना !

प्रेषक
श्री. केदारनाथ, पूना

विषय - सुची

★

बिड़ला
कटेली चम्पा
केश तेल
अनुपम गन्ध
एवं केश शोभा
केलिये

वीर-बच्चा
बच्चों की ताकत के लिये
अनुपम टानिक
VEER BACHHA
बिड़ला लेबोरेटरीज, कलकत्ता ३०

वहु प्रतीक्षित—

चन्दामामा

[अंग्रेजी]

जुलाई १९५५ का उद्घाटन का प्रथम अंक प्रकाशित हो गया।

आप अपनी प्रति हमारे एजेण्ट के पास सुरक्षित करा लीजिए
या सीधे हमारे यहाँ चन्दा भेज दीजिए।

जान्हमामु

[उड़िया]

भी शीघ्र ही निकलनेवाला है !

एक प्रति :
रु. ०-६-०

सालाना चन्दा :
रु. ४-८-०

चन्दामामा पब्लिकेशन्स,

वडपलनी :: मद्रास-२६

फ़ाउण्टेन कलम और स्याही
के लिए संसार भर में मशहूर
पायलट्
है।
फिर से आजकल
हिन्दुस्तान की
हर जगह पर
मिलने लगी हैं
•
श्रेष्ठता
के लिए
गारंटी है।
PILOT INK
MANUFACTURED BY
THE PILOT PEN Co. (INDIA) LTD.
CATHOLIC CENTRE, MADRAS-1

प्रकाशित हो रहा है !

दक्षिण भारत की मशहूर प्रकाशन संस्था 'कुबेरा एण्टरप्रैसेस लिमिटेड' की तरफ से प्रकाशित होनेवाला, जासूसी कहानियों का एक मात्र मासिक पत्र !

"जासूस"

का

सितम्बर '५५ का प्रथम अंक, आगस्त १५ को ही वितरण के लिये तैयार रहेगा !

यह पाठकों को मन्त्र-मुग्ध करनेवाली एक अद्वितीय सृष्टि है।

★ रंग बिरंगा मुख चित्र ★ खतरनाक और चौंधिया देनेवाली घटनायें ★ दिलो-दिमाग को चक्कर में डालनेवाले जासूसी कृत्य ★ सुन्दर कागज़, आकर्षक छपाई, समर्थ लेखकों की उत्कृष्ट कहानियाँ आपको इस में मिलेंगी।

एजेण्ट इस अवसर को हाथ से न जाने दें !
डिपाज़िट की कोई ज़रूरत नहीं। २५% कमीशन दिया जायेगा !

एजेन्टों को चाहिये कि अपने आर्डर के मुताबिक कमीशन काटकर रुपये, पन्द्रह दिन के पहले ही भेजें। हर महीना "जासूस" की प्रतियाँ पन्द्रह दिन के पहले ही एजेन्टों के पास भेजी जायेंगी।

¼ क्राऊन साईज़ — पृष्ठ संख्या ६४
एक प्रति रु. ०–८–० — सालाना चन्दा रु. ६–०–०

फोन : ३००६ — तार : "बहुनिधि"

"जासूस"

प्रकाशक :
कुबेरा एण्टरप्रैसेस लिमिटेड,
कुबेरा बिल्डिंग्स, २१, संकुराम चेट्टि स्ट्रीट, पोस्ट बक्स नं. १५११, मद्रास–१

ग्राहकों को एक जरूरी सूचना।

ग्राहकों को पत्र-व्यवहार में अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करना चाहिए। जिन पत्रों में ग्राहक-संख्या का उल्लेख न हो, उन पर कोई ध्यान नहीं दिया जा सकता। पता बदल जाने पर तुरन्त नए पते के साथ सूचना देनी चाहिए। प्रति नहीं पाई, तो १० वीं के पहले ही सूचित कर देना चाहिए। बाद को आनेवाली शिकायतों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाएगा। —व्यवस्थापक, 'चन्दामामा'

चन्दामामा

संचालक: चक्रपाणी

"चन्दामामा" की लोकप्रियता मास प्रति मास बढ़ती जा रही है। इसके पाठकों का क्षेत्र निरन्तर विस्तीर्ण होता जा रहा है।

हमारा हमेशा यह प्रयत्न रहा है कि मनोरंजन के रूप में शिक्षाप्रद कहानियाँ भारत के शिक्षित परिवारों में, "चन्दामामा" द्वारा पढ़ी-सुनाई जायँ।

"धूमकेतु", हमारा धारावाहिक उपन्यास, इस प्रयत्न का एक दृष्टान्त था। पाठकों ने इसको बहुत पसंद किया, यह हमारे पास आये हुए पत्रों की संख्या से बखूबी सिद्ध होता है। इस अंक के साथ "धूमकेतु" समाप्त हो रहा है।

आगामी मास से एक और रोमांचकारी धारावाहिक उपन्यास प्रारम्भ किया जायेगा, जो "धूमकेतु" से भी अधिक रोचक और मनोरंजक होगा!

वर्ष : 6 जुलाई 1955 अङ्क : 11

चोर मुछन्दर !

सुन्दरपुर में रहता था एक,
नामी चोरों का सरदार;
नाम मुछन्दर ही था उसका,
चोरी के फ़न में हुशियार !

बहुत दिनों का एक पुराना,
बस्ती के बाहर था मन्दिर;
ग्राम-देवता की प्रतिमा थी,
उसमें सजी-सजायी स्थिर।

सुन्दर सुन्दर गहने उसके,
देख एक दिन मन ललचाया;
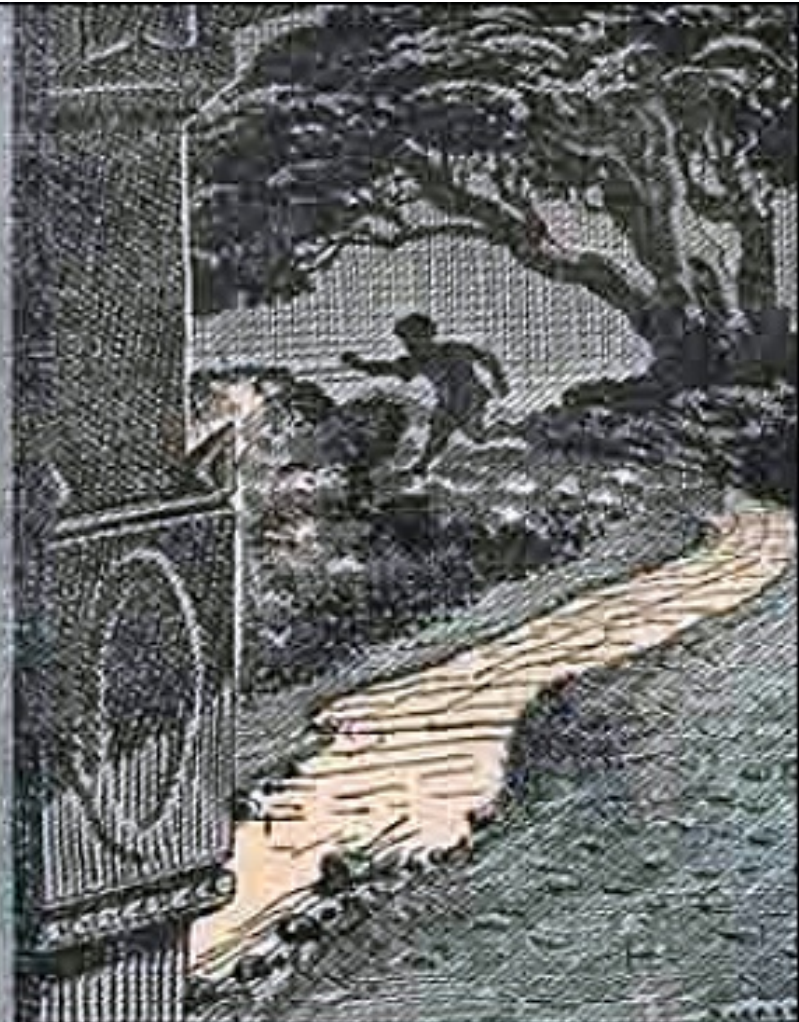
लगा सोचने तभी मुछन्दर—
चोरी का झट 'प्लान' बनाया !

बीत चली जब आधी रजनी,
निद्रामग्न हुआ संसार;
चोर मुछन्दर चुपके से तब;
जा पहुँचा मन्दिर के द्वार।

लगा दिये अन्दर से साँकल,
गहने सारे लिये निकाल;
आहट पाकर रखवाले ने,
दी मुंडी बाहर से डाल।

फिर दौड़ा वह गया गाँव में,
सब मर्दों को शीघ्र जगाया;

ग्राम-देवता के प्रांगन में,
बुला सभी को ले वह आया।

सभी बहादुर योद्धा आये,
बरछे - भाले - लाठी लेकर—
"दरवाज़ा खोलो अब जल्दी!"
कहा उन्होंने धक्का देकर।

सुनते ही वह खोल किवाड़ें,
कूद पड़े झट निकल देवता—
"ओम् ओम् सत् काली!" कहते
लाल लाल आँखें कर देखा।

लखते ही वह चिल्लाये सब—
"साक्षात देवता! अरे देवता!"

* * *

और भीत हो भागे सब जन,
किसको उस क्षण कौन देखता!

मौका पाकर हँसते हँसते,
ग्राम-देव का वेष उतारा;
बाँधी गहनों की गठरी औ',
अपने घर को चोर सिधारा।

कुछ दूरी से देख यही सब,
रखवाले को रोना आया;
नहीं देवता! हाय, चोर था!!
यही जानकर वह पछताया!

मुख - चित्र

पांडव जब वनवास में थे, मार्कण्डेय उनके यहाँ आकर कई कहानियाँ सुनाया करता था। निम्न कहानी भी उन्हीं में से एक है :

पहिले कभी वैवस्वत मनु नाम का एक राजा रहा करता था। जब गंगा नदी के किनारे वह तपस्या कर रहा था, एक छोटी मछली ने आकर उससे यों प्रार्थना की—"हे महानुभाव! हमारी जाति में बड़ी मछलियों का छोटी मछलियों को निगलने का रिवाज़ है। इसलिये मुझे डर लग रहा है कि कहीं कोई बड़ी मछली मुझे न निगल जाय! अगर आप मुझे यहाँ से निकालकर किसी सुरक्षित जलाशय में छोड़ देंगे तो मैं आपके एहसान का बदला चुका दूँगा!"

दयालु वैवस्वत ने उसे वहाँ से ले जाकर एक दूसरे पोखर में डाल दिया और उसकी निगरानी करने लगा। कुछ ही दिनों के अन्दर वह मछली बड़ी हो गयी और उसने फिर राजा से प्रार्थना की—"हे महाराज! यह जगह मेरे लिए काफ़ी नहीं है! कृपा करके एक बड़े पोखर में मुझे डाल दीजिएगा........!"

उसकी बात मानकर राजा ने एक बड़े पोखर में उसे छोड़ दिया। बाद को फिर वह मछली इतनी बड़ी हो गयी कि उस पोखर में वह समा नहीं सकी! तब राजा ने उसकी इच्छा के अनुसार उसे फिर से गंगा नदी में छोड़ दिया। आखिर जब गंगा नदी भी उसके लिये छोटी मालूम हुई तो उसने समुद्र को जाने की तैयारी करके राजा से कहा—"हे महाराज! अभी महा प्रलय होनेवाला है। तब आप महान सप्त ऋषियों और सृष्टि के समस्त जीवों को एक नाव में चढ़वाकर समुद्र में चले आइये! मैं अपने सींग के सहारे उस नाव को महा प्रलय से बचाऊँगी....!"

कुछ समय बीतने पर महा प्रलय आ ही गया। तब महा विष्णु ने मछली के रूप में उस नाव को महा प्रलय से बचाकर हिमालय की चोटी पर पहुँचाया, जो महा प्रलय से सुरक्षित थी! इसी वैवस्वत मनु के ही कारण संसार में पुनः सृष्टि का प्रारंभ हुआ।

कृतघ्न मनुष्य

राजा ब्रह्मदत्त के ज़माने में काशी में एक बहुत बड़ा रईस रहा करता था। जब उसने नौ करोड़ रुपये पूरे कर लिये, तो उनके एक लड़का पैदा हुआ। इसलिये लड़के का नाम उन्होंने नवकोटी नारायण रखा।

नारायण के पिता ने, जो कुछ लड़के ने माँगा, उसको दिया। उसकी हर इच्छा वह पूरी किया करता। उसकी जो मर्जी होती, करता। वह धूर्त और दुष्टों का सहवास करने लगा। थोड़े दिनों बाद पिता का स्वर्गवास हो गया।

छुटपन से जो कर्ज़ नारायण लेता आया था, बढ़ता गया। महाजनों ने उसे यकायक घेर लिया और अपना कर्ज़ माँगने लगे। उस हालत में, नारायण जीवन से ऊब उठा। और कोई रास्ता नहीं था। उसने आत्म-हत्या कर लेने में ही अपना भला समझा। फिर कुछ सोचने के बाद महाजनों से उसने कहा—"मैं गंगा के किनारेवाले पीपल के पेड़ के नीचे रहूँगा। वहाँ हमारे पूर्वजों की निधि गड़ी हुई है। आप अपने दस्तावेज़ों को लेकर वहाँ आइये"।

सब के सब उस पीपल के पेड़ के नीचे जमा हो गये। नारायण निधि को ढूँढ़ता ढूँढ़ता, इधर उधर लड़खड़ाने लगा। महाजनों को कुछ दूरी पर खड़ा देख, वह धड़ाक से "जय परमेश्वर" कहता गंगा में जा कूदा। और देखते देखते गंगा का तेज़ पानी उसे बहुत दूर बहा ले गया।

• • •

उन दिनों बोधिसत्व ने एक हरिन का रूप धर रखा था। वह और हरिनों के झुण्ड से अलग, गंगा के किनारे, एक घने आम के बगीचे में रहा करता था। वह

हरिण भी और हरिणों से बिल्कुल भिन्न था—सुनहला रंग, चान्दी के सींग, हीरे के समान आँखें, लाख के खुर—उसमें एक प्रकार का दिव्य सौन्दर्य था।

उस हरिण को आधी रात के समय किसी मनुष्य का विलाप सुनाई दिया। कौन रो रहा है—यह जानने के लिये, सुनहला हरिण, उल्टा तैर कर नारायण के पास पहुँच गया।

"नारायण को अपनी पीठ पर चढ़ाया और किनारे की ओर वह तैर पड़ा। फिर उसको अपने बाग में ले गया। वह जंगल से उसकी भूख मिटाने के लिये कन्द मूल फल इकट्ठा कर लाया।

कुछ दिनों बाद हरिण ने कहा—"मैं तुम्हें इस जंगल से बाहर निकालकर तुम्हारे राज्य का रास्ता दिखा दूँगा। आराम से चले जाओ। परन्तु एक ही एक बात है—महाराजा या कोई और रईस लाख लोभ दिखाये, पर यह न कभी बताना कि फ़लाने जंगल में सोने का हरिण है। बस यही मेरी इच्छा है। इसे निभाना।" नारायण मान गया। उसके वचन का विश्वास कर, हरिण ने उसको अपनी पीठ पर चढ़ाया, और काशी जानेवाले रास्ते पर उसको छोड़ दिया।

* * *

ठीक जब नारायण काशी नगर में पहुँचा तो वहाँ एक विचित्र घटना घटी। सुनते हैं, उससे पिछली रात महारानी ने सपने में किसी सोने के हरिण को उपदेश देते देखा था। रानी ने जाकर महाराजा से कहा—"अगर सचमुच सोने का हरिण न हो तो भला क्यों वह मुझे स्वप्न में दिखाई देता? हो न हो, ज़रूर ऐसा कोई हरिण है। आप जल्द से जल्द उसे पकड़कर दीजिये; वरना मेरे प्राण नहीं रहेंगे।"

बाद राजा ने दरबार बुलवाया। सलाह-मशविरा किया। बहुत सोचने-समझने के बाद उन्होंने यह तय किया: एक हाथी पर हौदा रखा जाय, हौदे में सोने की पिटारी और उसमें हज़ार मोती रखे जायें। फिर हाथी का जुलूस निकाला जायगा। जो कोई सोने के हरिण के ठिकाने के बारे में जानकारी देगा, उसका सम्मानपूर्वक हाथी पर चढ़ाकर जुलूस निकाला जायेगा।

इस प्रकार की एक घोषणा निकाली गई और शहर शहर में सेनानी यह घोषणा पढ़ रहे थे। ढिंढोरा पीटा जा रहा था। ठीक उसी समय नारायण ने काशी नगर में कदम रखा।

उसने सेनानी के पास जाकर कहा—"आप जिस सोने के हरिण की तलाश कर रहे हैं, उसके बारे में मैं सब कुछ जानता हूँ। मुझे राजा के पास ले जाइये, मैं सब बता दूँगा।"

बाद में, नारायण राजा और उसके दरबारियों को साथ लेकर जंगल में गया। सोने के हरिण की रहने की जगह दिखाकर, वह वहाँ से कुछ दूरी पर खड़ा हो गया।

राजा ने दरबारियों से कहा—"हथियार लेकर चारों तरफ से घेरो। देखो, हरिण कहीं बचकर न निकल जाये। होशियार रहना।" सब ने तैयार होकर एक बार शोर किया। हरिण का रूप धारण किये हुये बोधिसत्व ने वह शोर सुना।

"शायद कोई बड़ा अतिथि हमारे यहाँ आया है। उसका स्वागत किया जाय" यह सोचते हुये वह उठा। औरों से बच निकलकर वह सीधा राजा के पास गया।

हरिण की तेज़ चाल को देखकर राजा हैरान रह गया। हरिण पर छोड़ने के

लिये उसने धनुष पर बाण चढ़ाये। तब हरिण ने यों कहा—"राजन्! जल्दी मत करो। पहिले यह बताओ कि मेरे रहने की जगह के बारे में तुम्हें किसने बताया है?"

राजा को ये बातें सुन, ऐसा लगा, जैसे कोई अमृतवाणी सुनी हो। उसके बाण अपने आप नीचे गिर गये।

बोधिसत्व ने फिर पूछा—"तुम्हें किसने मेरे रहने की जगह के बारे में बताया है?" राजा ने नारायण की ओर दिखाया।

तब बोधिसत्व ने यों उपदेश दिया: "शास्त्रों में लिखा है कि मनुष्यों से बढ़कर इस दुनियाँ में कृतघ्न नहीं है, यह ठीक ही है। जन्तुओं की भाषा समझा जा सकता है, पक्षियों की भी। परन्तु मनुष्यों की भाषा समझ लेना ब्रह्मा के लिये भी साध्य नहीं है। क्योंकि, मनुष्य की किसी बात पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता। मन में कुछ होता है और ज़बान पर कुछ और।" बोधिसत्व ने बताया कि उसने कैसे नारायण की रक्षा की थी, और उसके रहने की जगह के बारे में न बताने का उसने कैसे वचन दिया था।

राजा क्रुद्ध हो उठा—"इस तरह का कृतघ्न इस भूदेवी के लिये ही भार है। एक बाण से ही इसका काम तमाम किये देता हूँ।" उसने बाण निकाला।

बोधिसत्व ने उसको रोकते हुये कहा—

"राजा! मत मारो। मारने में क्या रखा है? अगर ज़िन्दा रहा तो कभी न कभी उसे अक्ल आयेगी ही। अपनी घोषणा के अनुसार उसको उसका ईनाम दे दो। यही उचित है।"—राजा ने वैसा ही किया।

राजा को तब बोधिसत्व की उदारता और क्षमा का भास हुआ।

पंडित परिवार

अमरावती नगर में एक गरीब ब्राह्मण परिवार रहा करता था। वह पंडित-परिवार के नाम से प्रसिद्ध था। क्योंकि उस परिवार का मुखिया, उसकी पत्नी, उसका लड़का और बहू सभी पंडित थे। माने हुये कवि भी थे।

गरीबी से वे तंग आये हुये थे। और-जब उनको यह मालूम हुआ कि राजा भोज पंडितों का आदर-सम्मान करता है, तो वे चारों के चारों धारा नगरी गये। जब वे धारा नगरी से थोड़ी ही दूर थे, एक ब्राह्मण ने परिवार के मुखिया से पूछा— "आप कहाँ जा रहे हैं?"

"समस्त, वेद, वेदांग, पुराणों में पारंगत राजा भोज का दर्शन करने।"—पिता ने कहा।

"वेद, पुराणों की तो बात अलग, राजा भोज ठीक तरह अक्षर भी नहीं पढ़ पाता है। नहीं तो, ब्रह्मा की लिखी हुई, दारिद्र्य रेखा को मेरे ललाट पर पढ़कर भी उसने मुझे इतना धन दिया है।" कहकर वह ब्राह्मण हँसता हँसता वहाँ से चला गया।

यह बात सुनते ही पंडित परिवार को बहुत खुशी हुई। उन्हें मालूम हो गया कि राजा भोज सचमुच महान दानी हैं, और गरीबों के प्रति दया और आदर भी दिखाते हैं। वे सोचने लगे कि उनका भाग्य भी अवश्य खिलेगा।

परदेसी राजा की आज्ञा के बिना नगर में नहीं घुस सकते थे। इसलिये पंडित परिवार ने नगर के बाहर, एक पीपल के पेड़ के नीचे अपना बसेरा किया, और राजा के पास खबर पहुँचवाई।

थोड़ी देर बाद, राजा के नौकर ने एक लोटे में दूध लाकर कहा—"राजा ने

श्री दुर्गाशंकर त्रिपाठी

यही नहीं, उनके पांडित्य की मिठास भी देंगे।" यह ब्राह्मण का मतलब था। यह जानकर राजा भोज को सन्तोष हुआ। वे ब्राह्मण की बुद्धिमत्ता सराहने लगे।

फिर भी उसने इस पंडित परिवार की और भी परिक्षा करनी चाही। इसलिये उसने अपने शाही कपड़े निकालकर मामूली कपड़े पहिन लिये, और सूर्यास्त के समय वह पीपल के पेड़ के पास गया। वहाँ राजा भोज को केवल सास और बहू ही दिखाई दीं। यह अनुमान कर कि पिता और पुत्र संध्या करने के लिये नदी किनारे गये हुये होंगे, वह भी वहाँ गया। वहाँ उसे ब्राह्मण का लड़का दिखाई दिया। राजा ने उसकी तरफ़ ऐसे देखा, जैसे कोई प्रश्न पूछ रहा हो। राजा नदी का पानी ओक से पीने लगा।

आपको यह देने के लिये कहा है।" उसने लोटा परिवार के मुखिये को दे दिया। और कुछ न कहा।

"हमारे नगर में दूध के समान पंडित हैं, महान विद्वान हैं। भला आपके लिये कहाँ जगह!" यह राजा भोज का मतलब था। ब्राह्मण राजा का मतलब ताड़ गया। उसने दूध में थोड़ा शकर मिलाकर नौकर से कहा—"जाओ, इसको ले जाकर राजा को दो।"

"आपके नगर के पंडितों में, हम भी दूध में शकर की तरह घुल-मिल जायेंगे।

इस तरह पानी पीने से राजा भोज का मतलब था: "इस तरह समुद्र का पानी पीनेवाले अगस्त्य की तरह तुम भी ब्राह्मण हो न?"

ब्राह्मण ने राजा भोज का अर्थ जान, वेष बदले हुये राजा को इस प्रकार देखा, मानों वह भी एक प्रश्न पूछ रहा हो।

उसने एक पत्थर उठाकर पानी में फेंका। "समुद्र में पहाड़ फेंककर, समुद्र पर पुल बांधनेवाले रामचन्द्र जी की तरह तुम भी क्षत्रिय हो न!"—यह उसका मतलब था।

राजा भोज यह समझ गया और बहुत सन्तुष्ट हुआ। वह अपने महल में चला गया। परंतु वह इस पंडित परिवार की और परीक्षा करना चाहता था। उनकी कविता-शक्ति को बिना परखे उसको चैन न थी। उसने लकड़हारे का वेष धरा। सिर पर लकड़ियों का गट्ठर रख, नगर के दरवाज़े बन्द कर देने से पहिले वह बाहर आ गया और पीपल के नीचे बैठे हुए पंडित परिवार के साथ जा मिला।

"मुझे जंगल में देर हो गई। नगर के फाटक बन्द कर दिये गये हैं। आप जिस दाम पर चाहें, मेरे लकड़ियों के गट्ठर खरीद लीजिये और मुझे रात भर अपने साथ रहने दीजिये।"—राजा भोज ने परिवार के मुखिया से हाथ जोड़कर प्रार्थना की। ब्राह्मण उसे पहिचान न पाया।

उस ब्राह्मण ने जो थोड़ा बहुत पैसा था, उसको दिया और कहा—"अच्छा, तो

यह सुन जागे हुये ब्राह्मण ने कहा—"काश्यां वासः सतां सेवा, मुरारे स्मरणं तथा।" इसका अर्थ है—"काशी में रहना, सज्जनों की सेवा करना, भगवान का नाम स्मरण करना।"

भोजराज यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और बिना कुछ कहे, सो गया। फिर एक पहर खतम होने के बाद, ब्राह्मण ने अपनी पत्नी को जगाया और स्वयं सो गया।

थोड़ी देर बाद राजा भोज गुन गुनाने लगा! "असारे खलु संसारे सारमेतद्द्वयं स्मृतं"। इस निस्सार संसार में दो ही सारवान् वस्तु समझी जाती हैं।

यह सुन ब्राह्मण की पत्नी ने कहा—"कसार श्शर्करा युक्तः कंसारि चरण द्वयं" अर्थात् मीठे से बने पकवान और कृष्ण के पैर।

तीसरे पहर जब ब्राह्मण का लड़का पहरा दे रहा था, तब राजा भोज ने फिर यों कहा—"असारे खलु संसारे सारं श्वशुर मन्दिरं"। अर्थात् इस निस्सार संसार में सारवान ससुर का घर है।

तब ब्राह्मण के लड़के ने इस समस्या का यों हल किया—"हरिश्शेते हिमगिरौ, हरि-

खैर, यहीं ठहरो बेटा! क्या यह हमारे बाप-दादाओं की जगह है?—"

रात में क्योंकि चोरों का डर था, इसलिये सब के सब एक साथ नहीं सोये। एक एक करके उन्होंने पहरा देने का निश्चय किया। पहिली बारी पिता की थी। इसलिये तीनों सो गये।

थोड़ी देर बाद, वेष बदले हुये राजा भोज ने कहा—"असारे खलु संसारे, सारमेतत्त्रयं स्मृतं"। यानी, इसका मतलब था—"इस निस्सार संसार में तीन ही चीज़ों को सारवान् कहा गया है।"

शेते पयोनिधौ "। शिव अपने ससुर के घर हिमालय पर लेटा हुआ है और विष्णु अपनी ससुराल दुग्ध सागर में लेटा हुआ है।. शिव की पत्नी पार्वती, हिमालय की पुत्री है, विष्णु की पत्नी लक्ष्मी दुग्ध सागर में पैदा हुई थी।

यह सुनकर राजा भोज के सन्तोष की सीमा ही न रही। क्योंकि चौथी बारी बहु की थी, उसके उठते ही राजा भोज ने कहा—"असारे खलु संसारे सारं सारंगलोचना"। अर्थात्, इस निस्सार संसार में स्त्री ही एक सार है।

यह सुन ब्राह्मण की बहू ताड़ गई कि यह लकड़हारा राजा भोज ही है। उसने यों जवाब दिया—"यस्याः कुक्षौ समुत्पन्नो, भोजराज भवादृशः"। "हे राजा भोज! जिस स्त्री की कोख से आप जैसे व्यक्ति पैदा हों, वह स्त्री ही इस निस्सार संसार में सारवती है।" यह बात कान में पड़ते ही, राजा भोज, झट उस अन्धेरे में ही अपने महल में चला गया। उसे उनकी और परीक्षा लेने की आवश्यकता न थी।

सवेरे होते ही, पंडित परिवार को दरबार से निमन्त्रण पहुँचा। निमन्त्रण को पाकर पंडित परिवार का हर सदस्य बहुत प्रसन्न हुआ। वे समझ गये कि राजा भोज वेष बदलकर उनकी परीक्षा लेने के लिये आया था, और परीक्षा में वे उत्तीर्ण हुये। सब तुरन्त दरबार में गये।

राजा भोज ने पंडित परिवार की बड़े आदर के साथ आवभगत की। उसने उनकी प्रशंसा की, और कहा कि पंडित परिवार का हर सदस्य समानरूप से पंडित था।

बाद में उसने उनको माहवारी वेतन पर अपने दरबार में रख लिया।

उन दिनों तक्षशिला का राजा कलिंगदत्त था। वह बौद्ध धर्मावलम्बी था। परन्तु उसके राज्य में वैदिक धर्म के अनुयायी भी काफ़ी थे। राजा उनको बौद्ध-मत स्वीकार करने के लिये बाधित भी न करता था। पर जो कोई उसके पास बौद्ध-धर्म के बारे में जानने के लिये आता तो वह उसे बुद्ध का उपदेश दिया करता।

इस प्रकार बौद्ध-मत को स्वीकार करनेवालों में वितस्तादत्त नाम का एक रईस भी था। परन्तु उसके लड़के, रत्नदत्त को वैदिक धर्म में ही विश्वास था। इसलिये वह हमेशा पिता को डाँटता-डपटता रहता।

"तुम पापी हो। इसीलिये तुमने वैदिक-धर्म छोड़ दिया। ब्राह्मणों की पूजा छोड़ बौद्ध भिक्षुओं की पूजा कर रहे हो। भला तुम पर भी ऐसे वाहयात धर्म का क्या जादू है, जिसको माननेवाले या तो सिर घुटाकर, मैले-कुचले कपड़े पहिन, भिखारी बने फिरते हैं, या ऐरे-गैरे सब मिल-मिलाकर, मठ में आराम से रहते हैं; न कोई जात, न धर्म, न पूजा-पाठ।

लड़के की बात सुन, पिता सहम उठता और कहा करता—"बेटा! तुम बाह्य आडम्बर को ही धर्म समझे बैठे हो! क्या जन्म से ब्राह्मण होते हैं? क्या वे ब्राह्मण नहीं हैं, जिन्होंने क्रोध आदि को छोड़ दिया हो, सत्य अहिंसा का निष्ठा के साथ पालन कर रहे हों? क्यों इस धर्म की तुम निंदा करते हो, जो प्राणी मात्र को अभय-प्रदान करता है?"

परन्तु रत्नदत्त को पिता की एक बात भी अच्छी न लगी। वह पिता को नीच

कुमारी विमला माथुर

और तुच्छ समझने लगा। पिता-पुत्र में क्योंकि प्रेम घट गया था, इसलिये उनका पारिवारिक जीवन भयंकर हो गया था। रत्नदत्त ने व्यापार आदि में, पिता की सहायता करना छोड़ दिया। इसलिये तंग हो वितस्तादत्त ने राजा के पास जाकर अपने लड़के की बात कही।

सब सुनने के बाद राजा ने कहा—

"किसी न किसी बहाने अपने लड़के को कल दरबार में लाना। जो कुछ करना होगा, तभी मैं सोच-साचकर करूँगा....!"

व्यापारी अपने लड़के को अगले दिन दरबार में ले गया। राजा ने इस प्रकार अभिनय किया, मानों वह बहुत क्रुद्ध हो। उसने सैनिकों को आज्ञा दी—"इस पापी देशद्रोही का तुरंत सिर काट दो!"

रत्नदत्त मारे भय और आश्चर्य के परेशान हो गया। उसका पिता राजा के सामने गिड़गिड़ाने लगा—"महाराज! जल्दी मत कीजिये। ठीक सोच-साचकर, जो कुछ आपको करना है, कीजिये।"

"अच्छा, तो दो महीने तक इसका सिर न काटो। दो महीने बाद इसको

हमारे सामने उपस्थित करो। अब इसे घर ले जाओ!"—राजा ने कहा।

रत्नदत्त घर पहुँचकर सोचने लगा—"मैंने राजा का क्या अपकार किया है? वह मुझे क्यों मरवा रहा है? उसने बहुत कुछ सोचा, पर कुछ सूझा नहीं। राजा के दिये हुये दण्ड के कारण उसकी हालत बुरी हो गई। वह व्यथित और विह्वल हो गया था। उन दो महीनों में, न उसने कभी ठीक खाना ही खाया, न सोया ही। वह सूखकर काँटा हो गया।

दो महीने पूरे हो जाने के बाद व्यापारी ने अपने लड़के को राजा के सामने हाज़िर किया। रत्नदत्त को देखते ही राजा ने पूछा—"अरे, यह क्या? तुम तो मुरदे की तरह हो गये हो! क्या भोजन नहीं कर रहे हो? मैंने तुम्हें भोजन न करने के लिये तो नहीं कहा था!"

"महाप्रभु! जबसे आपने मुझे मरण-दण्ड दिया है, मुझे तो ऐसा लग रहा है, मानो खाने, पीने, सोने से भी मुझे मना कर दिया हो। मौत के भय से ही मैं इस प्रकार हो गया हूँ।"—रत्नदत्त ने जवाब दिया।

"अच्छा तो, अब जान गये, मौत का भय क्या होता है? ज़िन्दगी कितनी प्यारी होती है? हर प्राणी की भी तो ज़िन्दा रहने की इच्छा होती है। अब तुम ही बताओ, उन प्राणियों की रक्षा करनेवाला कौन-सा धर्म हो सकता है?"—राजा ने कहा।

रत्नदत्त की आँखें खुलीं। उसे बुद्धि आई। वह तुरंत राजा के पैरों पड़ गया, और उसे बौद्ध-धर्म के बारे में उपदेश देने के लिये कहा। कलिंगदत्त ने रत्नदत्त को बौद्ध-धर्म की दीक्षा दी।

[१८]

[ध्वंसावशेष नगर से भागते भागते व्याघ्रदत्त और समरसेन का एकाक्षी से सामना हो गया था न। तब समरसेन मांत्रिक की नज़र बचाकर भाग गया था। एकाक्षी को विश्वास हो गया कि दुश्मन के साथी समरसेन को मारने के लिये व्याघ्रदत्त की सहायता बहुत उपयोगी होगी। बाद में.......!]

व्याघ्रदत्त से मान्त्रिक एकाक्षी ने सारी परिस्थिति मालूम कर ली। वह यह जान गया कि उसकी तरह वह भी धन-राशि से भरी नाव के लिये प्रयत्न कर रहा था।

"क्या तुम्हें मालूम है कि धन-राशि से भरी नाव को पा लेना मनुष्य के बस की बात नहीं है?"—एकाक्षी ने व्याघ्रदत्त से पूछा।

सिर हिलते हुये व्याघ्रदत्त ने जवाब दिया—"शाक्तेय का त्रिशूल जो है?"

शाक्तेय के त्रिशूल का नाम सुनते ही एकाक्षी चौकन्ना हो गया। उसका ख्याल था कि सिवाय उसके और चतुर्नेत्र के कोई भी त्रिशूल के बारे में कुछ न जानता था।

प्राण के भय से व्याघ्रदत्त ने साफ़ साफ़ कह दिया कि ध्वंसावशेष नगर के, हाथियों के जङ्गल में, विष वृक्ष से सौ गज़ दूर, गुरु-द्रोही के अस्थि-पंजर में त्रिशूल रखा हुआ है। जब व्याघ्रदत्त ने यह बताया

आगे आगे व्याघ्रदत्त और उसके सैनिक चलने लगे; पीछे पीछे एकाक्षी अपने अनुचरों के साथ जाने लगा। कुछ दूर जाने के बाद एकाक्षी ने अपने अनुचरों को देखकर आज्ञा दी—"कपाल! कालभुजंग! तुम पहिले जाकर समरसेन को ढूँढ निकालो।"

उनके जाने के थोड़ी देर बाद ही व्याघ्रदत्त को उल्लू का चीत्कार सुनाई दिया। वह घबरा गया। एकाक्षी के सिर पर मँडराता हुआ उल्लू चिल्लाने लगा—"चतुर्नेत्र एकाक्षी, एकाक्षी।"

एकाक्षी भी भय से काँपने लगा। उसने बायें हाथ से आँखें मूँदीं और दायें हाथ से हवा में तलवार घुमानी शुरू की। कँपती आवाज़ में चिल्लाने भी लगा—"कपाल, कालभुजंग।" उसके बहुत चिल्लाने पर भी उसके अनुचर पास न आये। वह अभी सोच ही रहा था कि क्या किया जाय कि इतने में उल्लू वहाँ से उड़ गया।

व्याघ्रदत्त और एकाक्षी ने हाथियों के जंगल में प्रवेश किया। तब व्याघ्रदत्त ने एकाक्षी से कहा—"एकाक्षी महाशय! यही हाथियों का जङ्गल है। यह विष वृक्ष ऐसा लगाता है, मानों इसका हर पत्ता

कि शिवदत्त भी उसकी खोज कर रहा है, और समरसेन भी खोजता खोजता वहाँ पहुँच गया होगा, तब एकाक्षी गुस्से के कारण लाल पीला होने लगा।

"व्याघ्रदत्त! इस काम को करने के लिये हमें एक दूसरे की मदद करनी होगी। चतुर्नेत्र नाम का एक छोटा-मोटा मान्त्रिक इस बात में समरसेन की मदद कर सकता है। इसलिये अच्छा है, हम पहिले खँडहरवाले नगर में पहुँचे जायें। आओ, आगे आगे रास्ता दिखाओ।"—एकाक्षी ने कहा।

नाग की तरह फण उठाकर फूँकार रहा हो। यह जो सामने समाधि दिखाई दे रही है, इसी के नीचे शाक्तेय का त्रिशूल है।"

यह सुन एकाक्षी अत्यन्त प्रसन्न हुआ। "अच्छा, व्याघ्रदत्त! तुम अपने सैनिकों के साथ शिवदत्त का मुकाबला करो।" उसने व्याघ्रदत्त का हौसला भी बढ़ाया।

व्याघ्रदत्त ने न आगे देखा, न पीछे। इने-गिने अपने सैनिकों के साथ शिवदत्त के अनुयायियों पर कूद पड़ा।

शिवदत्त के अनुयायी, संख्या में व्याघ्रदत्त के सैनिकों से तिगुने थे। इस कारण से व्याघ्रदत्त के सैनिक एक एक करके उनकी तल्वारों के शिकार होने लगे।

यह देखकर एकाक्षी को आनेवाले खतरे के बारे में आशंका होने लगी। वह चिल्लाने लगा—"कराल....! कालभुजंग....!!" देखते देखते वहाँ कपाल और कालभुजंग आ पहुँचे। शिवदत्त के अनुयायी उनको देखते ही सिर पर पैर रखकर भागने लगे।

"व्याघ्रदत्त! हमारे लिये अच्छा मौका है। खोद-खादकर जल्दी पता लगाओ कि शाक्तेय का त्रिशूल कहाँ रखा हुआ है।"—एकाक्षी ने कहा।

व्याघ्रदत्त को भी विश्वास हो गया कि उसी की विजय अवश्य होगी। समरसेन और चतुर्नेत्र के वहाँ आने से पहिले ही वह त्रिशूल हथिया सकेगा। उसने अपने सैनिकों को एकत्रित किया और आगे कूदकर स्वयं मृतवीरों की समाधि खोदने लगा। मगर विष-वृक्ष से किसी के कराहने की ध्वनि आने लगी। फण उठाये साँप की तरह उस वृक्ष के पत्ते फुँकारने लगे।

एकाक्षी पेड़ के पास गया। तल्वार उठाकर, वह अभी मन्त्र पढ़ ही रहा था कि उसको व्याघ्रदत्त का आर्तनाद सुनाई दिया। एकाक्षी ने पीछे मुड़कर देखा। चतुर्नेत्र का अनुचर नर-वानर उसे हाथ से पकड़कर घुमा रहा था। उलू "एकाक्षी एकाक्षी" चिल्लाता विषवृक्ष की ओर चला आ रहा था।

एकाक्षी घबरा गया। इससे पहिले कि वह शाक्तेय का त्रिशूल ले सकता, चतुर्नेत्र और सैनिकों को लेकर समरसेन वहाँ पहुँच सकता था। वह डरने लगा। उसने काल भुजंग को बुलाकर नर-वानर से भिड़ने के लिये कहा। दूर पत्थरों पर व्याघ्रदत्त को फेंककर नर-वानर कालभुजंग से मुकाबला करने लगा। इधर उलू भी कपाल से लड़ने लगा।

एकाक्षी का भय सच निकला। चतुर्नेत्र "उलूका, नर-वानर" कहता कहता वहाँ आ ही गया। समरसेन के साथ कुछ सैनिक भी थे। भागते हुये शिवदत्त और उसके अनुचर भी फिर उसी तरफ़ चले आ रहे थे। बचे-खुचे व्याघ्रदत्त के सैनिक उनको रोक रहे थे।

काल भुजंग के जहरीले दान्तों से बचते हुये, नर-वानर एक बड़े पत्थर से उसे मारने लगा। उलू भी कपाल के पंजे से बच बच कर उसको काटने नोचने लगा।

कहीं ऐसा न हो कि मामला और बिगड़ जाय, एकाक्षी तलवार लेकर चतुर्नेत्र पर कूदा। चतुर्नेत्र भी बिना किसी डर के उसका मुकाबला करने लगा। इस बीच में, चतुर्नेत्र की सलाह पर समरसेन सैनिकों को साथ लेकर समाधि खोदने लगा।

जब वह मृत वीरों की समाधियाँ खोद रहा था, तब समरसेन को अन्दर से विचित्र प्रकार का अट्टहास और रुदन सुनाई देने लगा।

समरसेन डरा नहीं। अपने सरदार का साहस देखकर जैसे तैसे सैनिकों ने समाधियाँ खोद डालीं।

समाधि के नीचे एक ही एक अस्थि-पंजर था। समरसेन ने अनुमान किया कि वह गुरु-द्रोही का ही अस्थि-पंजर था। उस अस्थि पंजर की छाती पर, शाक्तेय का त्रिशूल गड़ा हुआ दिखाई दिया। काँपते हाथों से समरसेन ने अस्थि-पंजर में से त्रिशूल बाहर निकाला। तुरंत अस्थि-पंजर हवा में उठा और चक्कर काटने लगा। "गुरु शाक्तेय! आज से मैं शाप विमुक्त हो गया हूँ। मैं फिर शमन द्वीप को चला आ रहा हूँ।"— कहता कहता वह वहाँ से उड़ गया।

अस्थि-पंजर को, उस तरह उटकर आकाश में उड़ता देख, सब का कलेजा थम सा गया। तलवार हाथ में लिये एकाक्षी उड़ते हुये अस्थि-पंजर की ओर ताकने लगा। लड़खड़ाता हुआ समरसेन चतुर्नेत्र के पास पहुँचा और उसके हाथ में अपूर्व शक्तिवाले शाक्तेय के त्रिशूल को सौंप दिया।

जब एकाक्षी की नज़र अस्थि-पंजर से चतुर्नेत्र की ओर गई तो उसको चमकता हुआ त्रिशूल दिखाई दिया। उसके मुख से चीख निकली।—"कालभुजंग, कंकाल!" कहता कहता वह वहाँ से भागने लगा।

“चतुर्नेत्र, उस पापी को जिन्दा न जाने दो। उसको तुरंत मार डालो!”—समरसेन ने कहा। तब चतुर्नेत्र ने हँसते हुये बताया—“समरसेन! वह एकाक्षी कहीं न जा सकेगा। हम जब चाहे तब, चाहे वह कहीं भी छुपा हुआ हो, इस त्रिशूल द्वारा उसे मार सकते हैं।” उसने एकाक्षी की ओर त्रिशूल फेंकते हुये कहा—“गुरुद्रोही के इस भाई को मार डालो।”

त्रिशूल विद्युत की तरह हवा में उड़ा। देखते देखते, भागते हुये एकाक्षी के पास पहुँचा और ज़ोर से उसकी छाती में घुस गया। “हाय मरा!” चिल्लाता, चिल्लाता, एकाक्षी नीचे गिर गया। दूसरे क्षण त्रिशूल चतुर्नेत्र के पैरों के पास आकर गिर पड़ा।

“चतुर्नेत्र! एक और काम। इस कपाल और कालभुजंग को भी खतम करो।”—समरसेन ने उत्साह से कहा।

“एकाक्षी के मरने के बाद ये कपाल और कालभुजंग किसी का नुकसान नहीं कर सकते।” चतुर्नेत्र ने कहा।

तब चतुर्नेत्र ने कहा—“समरसेन हमें यहाँ समय नहीं खराब करना चाहिये। तुरंत

हमें पूर्वी किनारे पर पहुँचकर धन-राशि से भरी नाव पर अधिकार कर लेना चाहिये।”

जंगली रास्तों से पहाड़, घाटी पारकर वे पूर्वी किनारे पर पहुँचे। धन-राशि से भरी नाव, और उसका पहरा देनेवाली नाग-कन्या, हमेशा की तरह समुद्र में तैरती-डूबती नज़र आयी।

चतुर्नेत्र ने शाक्तेय के अपूर्व शक्तिवाले त्रिशूल को नाव की तरफ़ फेंका। त्रिशूल अग्नि की तरह नाव पर लगा। तुरंत नाग-कन्या ने नाव को किनारे पर लगाया।

"मैं शमन द्वीप के राजा शक्तिग्र का शिष्य हूँ। यह मन्त्र-शक्ति से पूर्ण उसका त्रिशूल है। गुरु की आज्ञा तो जानती ही हो। तुम आज से मेरी पत्नी हो।"— चतुर्नेत्र ने नाग-कन्या से कहा।

चतुर्नेत्र की यह बात सुनते ही, नाग-कन्या नाव छोड़कर चतुर्नेत्र के पास खड़ी हो गई। दोनों का पाणिग्रहण हुआ। समरसेन और उसके सैनिकों ने उनका जय जयकार किया। तब चतुर्नेत्र ने समरसेन की ओर मुड़कर कहा—

"आज से हम पति-पत्नी हैं। इस मन्त्र-वाले द्वीप में आराम से हम समय बिताना चाहते हैं। समरसेन! जिस काम पर तुम आये थे, वह भी हो गया है। धन-राशि के साथ तुम भी कुण्डलिनी द्वीप वापिस जा सकते हो।"

झट समरसेन यात्रा की तैयारी करने लगा। उसने चतुर्नेत्र को नमस्कार कर अपनी कृतज्ञता प्रकट की। चतुर्नेत्र ने उसको आशीर्वाद दिया और नाग-कन्या के साथ वह जंगल में चला गया।

यह सोचकर कि भयंकर हिंसक जन्तुओं से भरा भूकम्पोंवाला "मन्त्रद्वीप" उनके रहने योग्य नहीं है, शिवदत्त और उसके अनुयायी भी समरसेन के साथ कुण्डलिनी द्वीप के लिये रवाना हुये। निर्मल, शान्त समुद्र में एक मास यात्रा कर, एक दिन प्रातःकाल को सब के सब कुण्डलिनी द्वीप पहुँचे।

कुण्डलिनी द्वीप के राजा चित्रसेन, प्रजा और सैनिकों ने समरसेन का खूब स्वागत किया, क्योंकि बहुत सालों बाद वह स्वदेश लौटा था। वह न स्वयं जीते जी आया था, अपितु धनराशि से भरी नाव भी लाया था—इसलिये सबको परमानन्द हुआ।

[समाप्त]

धैर्य लक्ष्मी

एक गाँव में कोई ग्वाला रहा करता था। उसके पास चार पाँच सौ बकरियाँ तो थीं, पर एक इन्च अपनी ज़मीन न थी। यह सोचकर कि बकरियाँ फ़सल खायेंगी, गाँव के किसानों ने ग्वाले से कहा—"तुम गाँव में कम से कम दो बीघे ज़मीन खरीदो। वरना तुम गाँव में न रह पाओगे।"

ग्वाला बिचारा क्या करता! उसने गाँव के बाहर सिर्फ़ दो ही दो बीघे खरीदे। उसने उसमें जौ बोई। वह भी ठीक हुई।

थोड़े दिनों बाद ग्वाले की नज़र भी कम हो गई। ज़मीन का काम ग्वाले के लड़के के जिम्मे पड़ा। उसने भी पिता की तरह ज़मीन में जौ बोई।

खैर, इधर, धान्य लक्ष्मी, धन लक्ष्मी, धैर्य लक्ष्मी, "मैं बड़ी हूँ" कहती कहती लड़ती-झगड़ती जौ के खेत में आईं।

"इस ग्वाले के लड़के को देखो। थोड़ी-सी ज़मीन में कितनी ही मेहनत कर रहा है, पर कुछ फलता नहीं। अगर मैं इसके खेत में जाकर बैठ गई तो इसके सब कष्ट मिट जायेंगे।" कहती हुई धान्य लक्ष्मी ने खेत में प्रवेश किया।

"इसके कष्ट तू क्या हटा सकेगी? इसका वास्तव में फ़ायदा तो मैं करूँगी।" कहती हुई धन लक्ष्मी पैसे की गठरी का रूप धर गाँव के रास्ते में बैठ गई।

"अरे अरे! तुम भी क्या पगली हो गई हो? अगर मैं इसके सिर पर जा बैठी तो चाहे तुम कुछ भी करो, इसका कोई फ़ायदा न होगा।" कहती हुई धैर्य लक्ष्मी उसके सिर पर जा बैठी।

धान्य लक्ष्मी के खेत में घुसते ही—फ़सल बहुत बढ़ गई। परन्तु धैर्य लक्ष्मी

श्री कपूरचन्द जैन

के सिर पर सवार होने के कारण ग्वाले ने सोचा कि उस तरह के फ़सल के कारण खेत ही खराब हो जायेगा।

यह बात पिता से कहने के लिये वह घर की तरफ़ गया। जब वह उस जगह पहुँचा, जहाँ धन लक्ष्मी पैसों की गठरी के रूप में पड़ी थी, उसे सूझा—"क्यों न आँखें बन्द कर चला जाये। देखें, कितनी दूर जा सकता हूँ।" यह सोचकर, गठरी पार कर जब तक वह २० फ़ीट नहीं चला गया, उसने आँखें न खोलीं। उसने पिता से कहा कि देखते देखते सारी फ़सल खराब हो गई है। उसने ज़मीन बेच देने की ज़िद की। मगर पिता ने कहा कि उसे कोई खरीदेगा नहीं। जब निराश हो ग्वाले का लड़का खेत वापिस पहुँचा तो कोई व्यापारी उस खेत की ओर लगातार देख रहा था।

वह व्यापारी किसी और देश का था। उसने इस तरह की जौ की फ़सल कहीं न देखी थी। जब ग्वाले का लड़का मचान पर चढ़ रहा था तो व्यापारी ने पूछा—"क्यों भाई यह तुम्हारा खेत है?" लड़के ने कहा—"हाँ"

"क्या खेत बेचोगे?"—व्यापारी ने पूछा। क्योंकि वह अच्छे दाम दे रहा था, लड़का मान गया। कुछ भी हो, अपना अधिकार दिखाने के लिये, धन लक्ष्मी उस लड़के की सहायता करने लगी।

उसने व्यापारी के दिमाग में भी एक और ख्याल सुझाया। उसकी प्रेरणा के अनुसार व्यापारी ने कहा—"अरे लड़के! अब तुम्हारे पास तो ज़मीन रही नहीं। मेरे पास ही नौकरी कर लो। तीस रुपये माहवार दूँगा। जो मैं कहूँ सो करना।"

ग्वाले का लड़का मान गया। व्यापारी ने अपनी गाड़ियों पर से और सब समान

नीचे फिकवा दिया और उन पर जौ के पौधे कटवाकर रखवा लिये।

लड़के को साथ लेकर चल दिया। जाते जाते वे एक शहर में पहुँचे। व्यापारी ने उस नगर के राजा के पास आकर कहा—"देखा अपना यह जौ का गट्ठर! इस प्रकार की जौ संसार में कहीं नहीं है। आपने इसको अपने राज्य में लगवायी तो आनाज की कमी ही नहीं होगी। अगर आपने हौदा लगे हुये हाथी को दिया तो गाड़ी भर जौ के अंकुर दे जाऊँगा।" राजा मान गया। व्यापारी ने एक गाड़ी जौ व्यापारियों को बेचकर ग्वाले से गोटेदार कपड़े सिल्वाकर दिये। उसको हाथी पर चढ़ाकर कुछ दिनों बाद वह एक और शहर में पहुँचा।

रास्ते भर व्यापारी कहता आया कि हौदे पर बैठा हुआ व्यक्ति सोने का महाराजा है और स्वयं वह उसका मन्त्री है। इसलिये उस नगर के राजा ने ग्वाले के लड़के का राजोचित स्वागत-सम्मान किया और एक सुन्दर महल में उनके रहने का प्रबन्ध किया।

व्यापारी ने जौ के बारे में सबसे कहा—"हमारे सोने के महाराज के राज्य में

खराब से खराब जमीन में भी इस तरह की जो पैदा होती है। इसीलिये इनके राज्य में सिवाय सोने के और कुछ नहीं दिखाई देता।"

राजा और रानी ने सोचा कि यदि इस मन्त्री को मना लिया गया तो इस महाराजा का विवाह अपनी लड़की से कर सकते हैं। उन्होंने मन्त्री को बुलाकर यह बात उससे कही। उसने कहा—"मैं महाराजा से कह कर देखूँगा"।

जब महल में जाकर व्यापारी ने यह बात छेड़ी तो ग्वाले का लड़का घबरा गया। वह कहने लगा—"राजकुमारियाँ तो चुड़ैल होती हैं। मैं उनसे नहीं निभा सकता।"

"अरे पागल! मालूम है, तुम मेरे नौकर हो! जो मैंने कहा अगर तुमने नहीं किया तो हड्डी-पसली एक कर दूँगा। समझे?" व्यापारी आग बरसाने लगा। उसने राजा के पास जाकर विवाह का मुहूर्त भी निश्चित करवा दिया। परन्तु उसने कहा कि विवाह उनके देश की परम्परा के अनुसार ही होना चाहिये। राजा ने कोई आपत्ति न की।

मुहूर्त के समय, जब दूल्हे को लेने के लिये पाल्की उसके महल पर भेजी गई, तो नौकरों ने उसको बाँधकर पाल्की में रख दिया।

राजा और रानी ने सोचा—"शायद यह इनके देश की परम्परा है।

विवाह के समाप्त होते ही दूल्हे को शयनकक्ष में ले जाया गया।

"कमरे के बाहर तल्वार लेकर दो सैनिकों को तैनात कीजिये। जब जब दूल्हे कमरे से बाहर आये, तब तब उसे तल्वार से भोंकने का वे अभिनय करें।"—व्यापारी ने कहा। राज-परिवार ने सोचा, शायद वह भी उनके देश की एक रीति होगी।

ज्योंही ग्वाले का लड़का शयनकक्ष में घुसा, वह काँपने लगा। "अरे, बाप रे बाप! यह काली माई का कोई मन्दिर है। बलि देने के लिये ही मुझे यों सजाया गया है।"—वह सोचने लगा। उसने भागना चाहा, पर बाहर तल्वार लिये सैनिक पहरा दे रहे थे।

इस बीच में राजकुमारी ने शयनकक्ष में प्रवेश किया। तल्वार लिये हुये सैनिक चले गये। गहनों से चमकती हुई राजकुमारी को देखकर, वह सोचने लगा—"अरे, बाप रे बाप! अब क्या होगा मेरा? काली माई ही मुझे खाने के लिये स्वयं चली आ रही है।" वह घबरा गया। उसने राजकुमारी को एक धक्का दिया और सीधा अपने महल की ओर भाग गया।

उसे देखते ही व्यापारी आग-बबूला हो उठा। "अरे बेवकूफ! तेरी शादी एक राजकुमारी से करवाई और तू भागा आ रहा है। अक्ल है कि नहीं?" उसने ग्वाले के लड़के को खूब पीटा।

अगले दिन राजा ने व्यापारी को बुलाकर पूछा—"क्या बात है मन्त्री जी? आपके राजा हमारी लड़की को धक्का देकर चले गये। हम से क्या अपराध हुआ है?"
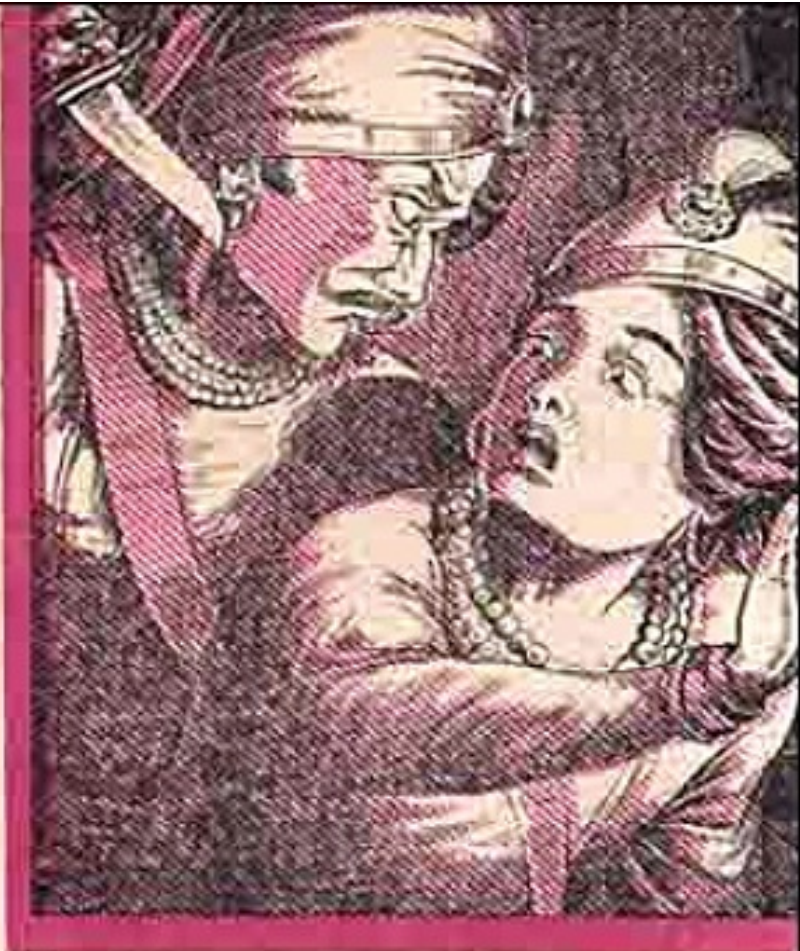
"अपराध तो कुछ भी नहीं हुआ है। रात मूसलाधार वर्षा हुई थी। ऐसा समय अच्छा नहीं समझा जाता है, इसलिये हमारे राजा नाखुश होकर चले गये।"—व्यापारी ने कहा। बिना यह जाने कि रात को वर्षा हुई थी कि नहीं, राजा ने पुरोहितों को कोड़े लगवाये। "अच्छा मुहूर्त सोचकर बताओ।"—राजा ने उन्हें आज्ञा दी।

उन्होंने रोते-धोते कहा—"क्षमा कीजिये। आज रात को अच्छा मुहूर्त है।"

दूसरी रात को भी ग्वाले का लड़का पहिले की तरह शयनकक्ष से भाग आया;

और व्यापारी ने फिर उसकी खूब मरम्मत की। "यह अपराध तूने दूसरी बार किया है। अगर तू फिर भाग कर आया तो तेरा सिर कटवा दूँगा।"—व्यापारी ने कहा।

परन्तु उसने राजा के पास जाकर कहा—"पुरोहित एकदम बेअक़ हैं। कल रात भी खूब वर्षा हुई थी।"

पुरोहितों को फिर कोड़े लगाये गये। "महाराज! क्षमा कीजिये। हमें भी सन्देह था कि कल रात का मुहूर्त उतना अच्छा न था। आज रात तो बहुत अच्छी है।"

तीसरे दिन फिर ग्वाले के लड़के को शयनकक्ष में प्रवेश कराया गया। यह सोचकर कि उसकी मौत—"काली माई" के हाथ से, नहीं तो व्यापारी के हाथ से बदी है, वह कांपता कांपता बैठ गया। "अब तो तुम दोनों की पोल खुल गई।"—धैर्य लक्ष्मी ने बाकी दोनों लक्ष्मियों से पूछा। यह कहते कहते वह ग्वाले के लड़के के सिर पर से उतर आई। तुरंत जो कुछ भय या सन्देह ग्वाले के लड़के के मन में थे, काफूर हो गये। उसमें धैर्य और साहस आ गया। "यह व्यापारी कितना भला आदमी है। मुझे पागल की तरह व्यवहार नहीं करना चाहिये। मुझे राजा की तरह रहना चाहिये। यह क्या मैं उसकी पोल खोलने के लिये उतारू हो रहा हूँ!"

जब इस बार राजकुमारी आई तो उसने उठकर उससे हालचाल पूछे। राजकुमारी को बड़ी खुशी हुई।

अन्त में, धैर्य लक्ष्मी के अनुग्रह से, ग्वाले का लड़का राजा भी बन गया। व्यापारी मन्त्री बना।

तब से धैर्य लक्ष्मी के रास्ता दिखाये और धान्य लक्ष्मी और धन लक्ष्मी कहीं नहीं जाते।

जब प्रसेनजित् श्रावस्ती का राजा था, दूर देश से एक ब्राह्मण नगर में रहने आया। सौभाग्य से एक धनी वैश्य व्यापारी के यहाँ उसको आश्रय मिल गया। वस्त्र, अन्न आदि के अतिरिक्त उसको खूब दान-दक्षिणा वगैरह भी मिलती थी। अकेला तो था ही, इसलिये खर्च कम था। उसने सौ मोहरें खरीदकर जमा कर लीं। उनको हिफ़ाज़त से रखने के लिये उसने उन्हें जंगल में एक जगह गाड़ दिया। न पत्नी-परिवार था, न भाई-बहिन ही; सम्बन्धी भी न थे, इसलिये उस ब्राह्मण के प्राण हमेशा उन मोहरों पर ही रहते। वह रोज़ जंगल जाया करता और अपने धन को देखकर आया करता।

एक दिन जब वह जंगल में गया तो वहाँ मोहरें न थीं। कोई उन्हें निकाल कर चम्पत हो गया था! ब्राह्मण पागल-सा हो गया। रोता-पीटता शहर में पहुँचा। जो कोई मिला, उससे उसने अपनी मुसीबत कह सुनाई। किसी को न सूझा कि उसको कैसे दिलासा दिया जाय!

"अब मेरा पैसा ही चला गया तो मेरे जीने से ही क्या फ़ायदा! नदी में जाकर आत्म-हत्या कर लूँगा!" कहता कहता ब्राह्मण नदी की ओर भागा।

तभी राजा प्रसेनजित् नदी में स्नान कर चला आ रहा था। उसने आत्म-हत्या करनेवाले ब्राह्मण को देखा, उससे सारी बात मालूम कर ली। "ब्राह्मण! आत्महत्या क्यों करते हो? राज्य में अगर चोरी

डी. सुबोध कुमार

होती है तो उसका पता लगाने के लिये क्या मैं नहीं हूँ ? जिसने तुम्हारा रुपया चुराया है, मैं उसे पकड़ूँगा, नहीं तो तुम्हारा धन मैं अपने ख़ज़ाने से दिल्वा दूँगा । जहाँ तुमने यह रुपया गाड़ा था, क्या उस जगह की कोई निशानी है ?"—राजा ने पूछा ।

"महाप्रभू ! जहाँ मैंने पैसा गाड़ रखा था, वहाँ एक जंगली तौरी का पौधा था। अब वहाँ वह भी नहीं है ।"—ब्राह्मण ने कहा।

"जंगली तौरी का पौधा कैसे निशानी हो सकता है ? वैसे पौधे तो बहुत हो सकते हैं ।"—राजा ने पूछा ।

"नहीं, महाप्रभू ! वहाँ एक ही जंगली तौरी का पौधा था ।"—ब्राह्मण ने कहा ।

"तुमने वहाँ पैसा गाड़ रखा है, यह कितनों को माऌम है ?"—राजा ने पूछा ।

"महाप्रभू ! सिवाय मेरे पँछी तक कोई नहीं जानता । अगर किसी को कहना भी चाहूँ तो भला मेरा कौन है, जिससे मैं कहूँ ?"—ब्राह्मण ने कहा ।

राजा अपने महल में आकर इस चोरी के बारे में सोचने लगा । चोर का पता लगाने का तरीका उसे सूझ गया। उसने मन्त्री को बुलाकर कहा—

"मन्त्री ! मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है । तुरंत वैद्यों से परामर्श करना आवश्यक समझता हूँ । शहर में जितने वैद्य हों, उन सब को बुलवाइये ।"

शीघ्र ही राजमहल में सब वैद्य उपस्थित हुये । एक एक करके राजा ने उनको अपने पास बुलाया और उनसे पूछा—"आज और कल तुमने किन किन रोगों के लिये दवाई दी है ? किन किन बूटियों का उपयोग किया है ?" उनका जवाब सुनकर राजा ने उन्हें भेज दिया । मन्त्री को, जो यह देख रहा था, राजा का मतलब समझ में न आया ।

आखिर एक वैद्य ने कहा—"महाप्रभु! वैश्य शिरोमणि मातृदत्त के लिये मैंने जंगल तौरी का रस कल दिया था।"

राजा ने और गौर से पूछा—"ऐसी बात है! तो तुम्हें जंगल तौरी का पौधा मिला कहाँ?"

"जंगल से ढूँढ़-ढाँढ़कर मेरा नौकर ले आया था महाराज!"—वैद्य ने कहा।

"अच्छा तो उस नौकर को हमारे पास तुरंत हाज़िर करो।"—राजा ने कहा।

वैद्य के नौकर के आते ही राजा ने पूछा—"क्यों, जंगल तौरी के पौधे की जड़ में गड़े हुये हज़ार मोहरों का तूने क्या किया है।"

नौकर डर के मारे पीला पड़ गया। "मैंने घर में रख रखे हैं, महाराज!"—उसने कहा।

"वे फ़लाने ब्राह्मण की हैं। उन्हें हिफ़ाज़त से उसे सौंप दे!"—राजा ने हुक्म दिया। नौकर सलाम करता करता चला गया।

पर मन्त्री को, जो यह सब देख रहा था, यह न मालूम हुआ कि राजा ने मोहरों के चुरानेवाले को कैसे पकड़ा।

उसने राजा से पूछकर ही यह मालूम करना चाहा।

"महाराज! मुझे यह समझ में नहीं आ रहा कि आपने इतनी आसानी से कैसे चोर पकड़ लिया?"—मन्त्री ने सविनय पूछा।

राजा ने हँसकर कहा—

"चोरी के बारे में जो कुछ ब्राह्मण ने कहा था, उसे सच मानकर ही मैंने चोर को पकड़ने की सोची थी। नगर में लाखों आदमियों में से एक ही आदमी वह चोरी कर सकता था। और ब्राह्मण यह कह भी रहा था कि गड़े हुए पैसे के बारे में किसी को भी न मालूम था। उस जगह पर बिना यह जाने कि वहाँ रुपया गड़ा हुआ है, किसको खोदने की ज़रूरत होगी? यानी जिसको जंगल तौरी की ज़रूरत हो उसी को ही।

"आस पास कहीं जंगली तौरी का पौधा न था। यह बात वह ब्राह्मण ही बता रहा है। यह सच ही होगा, यह भी मैंने विश्वास कर लिया। अलावा इसके अगर कोई धन के लिये ही वह जगह खोदता तो जंगली तौरी का पौधा वहीं छोड़ जाता। जंगली तौरी के पौधे के लिये खोदनेवाला ही दोनों चीज़ों को ले आ सकता है।

जंगली तौरी के पौधे से किन्हें काम रहता है? वैद्यों को। इसीलिये मैंने सब वैद्यों को बुलवाया था। जब मुझे जगली तौरी के पौधे से औषधी बनानेवाले वैद्य का मालूम हुआ तो मुझे चोर का भी मालूम हो गया। इसमें क्या उलझी हुई बात है मन्त्री!"

यह बात सुन मन्त्री मन ही मन प्रसेनजित की बुद्धिमता की सराहना करने लगा।

लोभ का फल

रत्नपुर नामक नगर में शिव और माधव नाम के दो दोस्त रहा करते थे। उन दोनों ने एक दिन उज्जयिनी जाना चाहा, क्योंकि उन्होंने सुन रखा था कि उज्जयिनी के राजा के पुरोहित, शंकर स्वामी ने बहुत सा रुपया जमा किया हुआ था। शिव माधव ने सोचा कि उसका रुपया-पैसा लेकर आराम से ज़िन्दगी काटेंगे।

शिव पक्के ब्रह्मचारी का वेष बनाकर पहिले पहुँचा। सिप्रा नदी के किनारेवाले एक मठ में वह रहने लगा। रोज़ वह शरीर पर कीचड़ लगाकर नदी में नहा, किनारे पर शीर्षासन किया करता था। फिर शिवालय में जाकर घण्टों पूजा-पाठ किया करता। दोपहर होने पर सिर्फ़ तीन घरों में भिक्षा माँगता और भिक्षा को तीन भागों में बाँटता। एक भाग कौवों को देता, एक अभ्यागतों को, और एक भाग स्वयं खाता।

कुछ दिनों बाद राजपूत का वेष बनाकर माधव भी उज्जयिनी पहुँचा। वह अपने साथ कुछ सामान और नौकर-चाकर भी लाया। एक अच्छी जगह पर वह रहने लगा। उज्जयिनी पहुँचते ही माधव सिप्रा नदी में स्नान करने के लिये गया। वहाँ उसने शिव को शीर्षासन करते हुये देखा। साष्टांग नमस्कार कर उससे कहा—"महाशय! फिर कितने दिनों बाद आपके दर्शन करने का भाग्य प्राप्त हुआ है।" शिव ने माधव को देखने के लिये आँखें भी न खोलीं। माधव वापिस चला गया।

उस रात को, शिव और माधव एकान्त में मिले। शंकर स्वामी की सम्पत्ति का अपहरण करने के लिये उन्होंने एक चाल सोची।

श्री कुमारी शांति दत्त

जब शंकर स्वामी ने माधव की भेजी हुई धोतियाँ देखीं तो उसे बहुत प्रसन्नता हुई। उसने सोचा कि कोई नादान, बेचारा आ पहुँचा है, उसने उसको अन्दर बुलवाया। माधव ने शंकर स्वामी को नमस्ते कर कहा—"पंडित जी! मैं दक्षिण का हूँ। मुझे मेरे सम्बन्धियों ने हरा दिया और मैं अपनी बपौती लेकर यहाँ आ गया हूँ। मुझे रुपये-पैसे की तो कोई दिक्कत नहीं है। पर देखिये, कभी मेरे हाथ में भी शक्ति और ओहदा था, हुक्म चलाने की आदत-सी है, इसलिये मेरे नौकर-चाकर कहते हैं कि दरबार में कोई नौकरी कर लूँ। अगर आपने मेरी सहायता की तो मैं भी आपकी मदद करूँगा। मेरे पास हीरे-मोती वगैरह भी हैं।"

सवेरे होते ही माधव ने नौकर के हाथ धोतियाँ उपहार में शंकर स्वामी के पास भिजवाईं और कहला भेजा—"माधव नाम का राजपूत आपका दर्शन करने के लिये बहुत दूर से आया हुआ है।" शंकर स्वामी बहुत ही लालची था। जब कोई राजा को कोई भेंट देता, वह स्वयं उसका आधा हड़प लेता। और कहीं ऐसा न हो, लोग उसकी बदनामी करने लगे, उसने इस तरह इकट्ठे किये हुये धन को सात घड़ों में रखकर ज़मीन में होशियारी से गड़वा दिया था।

हीरे मोती का नाम सुनते ही शंकर स्वामी फूला न समाया। वह माधव को राजा के पास ले गया, और सिफ़ारिश कर उसने उसको दरबार में अच्छी नौकरी भी दिल्वा दी।

"यह तो आपके लिये परदेश है। रहने के लिये अच्छी जगह न मिलेगी। इसलिये आप हमारे घर ही रहिये।" शंकर स्वामी ने माधव से कह कर, उसको मना लिया।

माधव शंकर स्वामी के घर रहता, रोज़ दरबार में आया करता, रात को घर आ जाता। कभी कभी घड़े में से नकली हीरे-मोती निकालकर शंकर स्वामी को दिखा कर कहा करता कि वे बहुत कीमती हैं, उनका मिलना मुश्किल है। शंकर स्वामी भी उसकी बातों पर विश्वास किया करता।

कुछ दिन गुज़र गये। माधव ने अपचन का बहाना कर भोजन करना छोड़ दिया। अगले दिन उसने चारपाई पकड़ी। चार पाँच दिनों में वह सूखकर काँटा हो गया। उसने शंकर स्वामी को बुलाकर कहा—"पंडित जी! मेरा समय नज़दीक आ गया है। मरने से पहिले मैं अपना सारा धन किसी अच्छे ब्राम्हण को देकर पुण्य कमाना चाहता हूँ। किसी योग्य ब्राम्हण को बुलवाइये।"

शंकर स्वामी बहुत सारे ब्राम्हणों को बुलाकर लाया। पर माधव कहा करता—"और भी अच्छे ब्राम्हण को बुलवाइये।" आखिर शंकर स्वामी हताश हो गया।

जान-पहिचान के लोगों ने शंकर स्वामी को सलाह दी—"उस मठ में एक ब्रम्हचारी तपस्या किया करता था। सारी उज्जयिनी
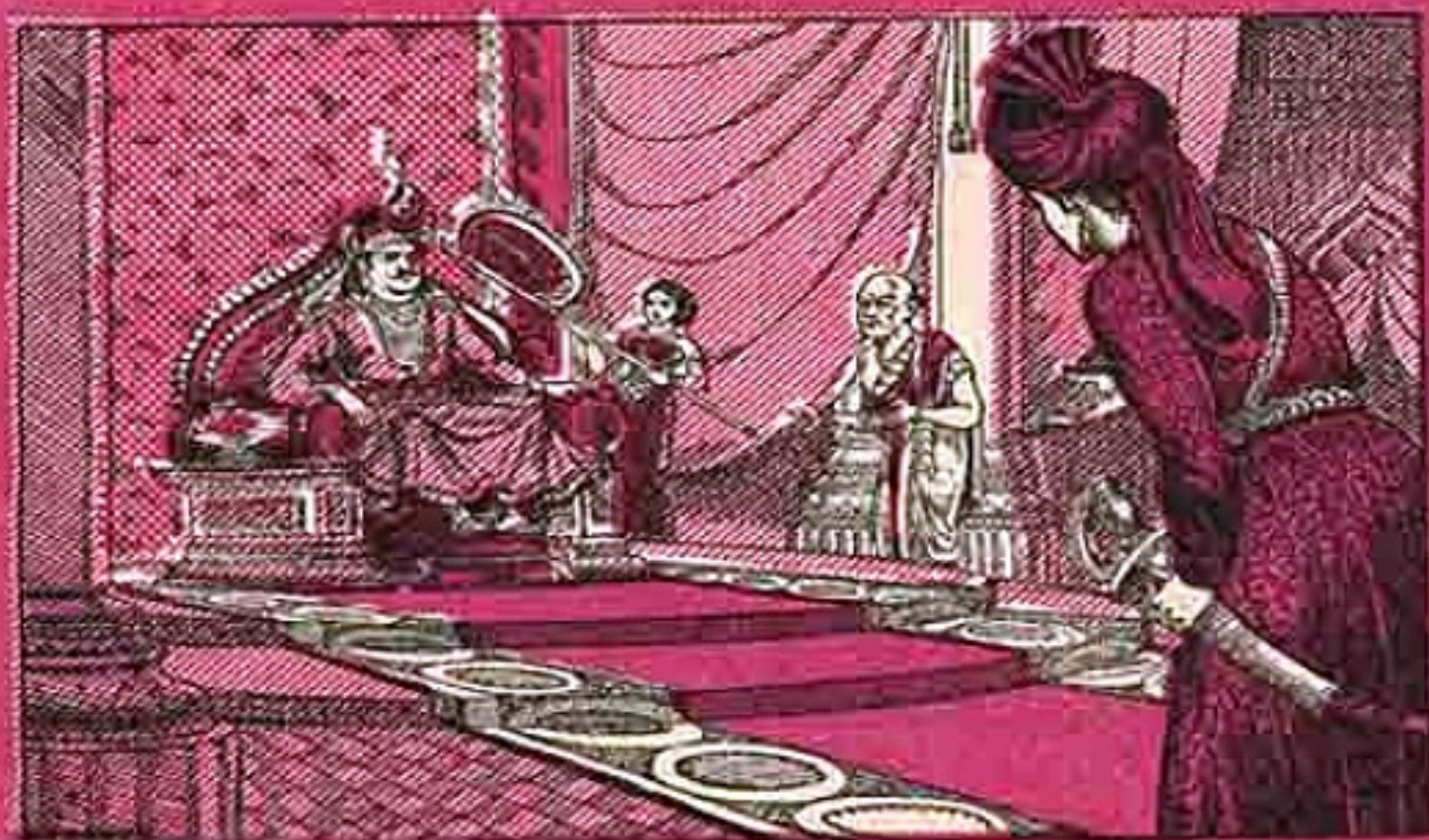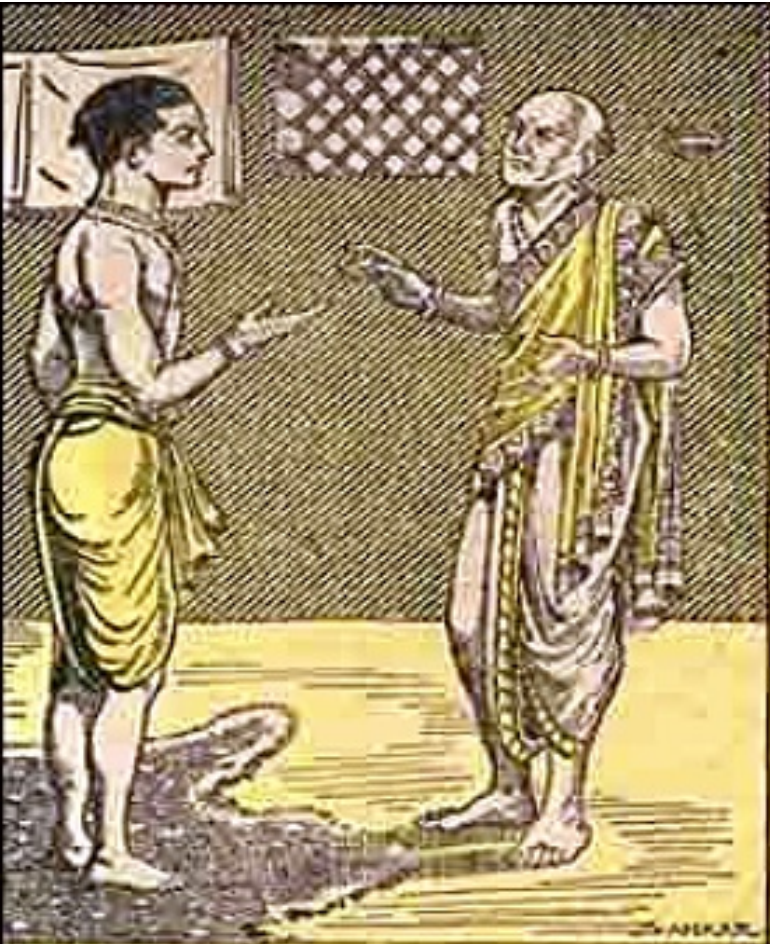
को दान देने पर भी उससे अच्छा योग्य व्यक्ति न मिल सकेगा।"

शंकर स्वामी ने मठ में आकर शिव को देखकर कहा—"महाराज, आइये, रत्नदान ग्रहण कीजिये। शीघ्र ही पधारिये।"

शिव ने हँसकर कहा—"मैं तो भिक्षा पर जीवन निर्वाह करनेवाला ब्रह्मचारी हूँ। मुझे भला रत्नों की क्या ज़रूरत! जाइये! किसी गृहस्थी को खोजकर दीजिये।"

"ऐसी बात नहीं है। यह आदमी सिवाय आपके किसी और को नहीं देना चाहता। फिर यह भी कहाँ लिख रखा है कि आप हमेशा इसी तरह ब्रह्मचारी बने रहें! रत्नों को लेकर शौक से विवाह कीजिये"—शंकर स्वामी ने कहा।

"यहाँ मैं किसी को जानता पहिचानता नहीं हूँ। आप कृपा करके जाइये। मुझे कौन लड़की देगा?"—शिव ने कहा।

"मैं अपनी लड़की दूँगा। अब तो ठीक है! जल्दी कीजिये। वह आदमी मरने को है।" शंकरस्वामी शिव को साथ ले गया। और अपने हाथ से ही उसने माधव के नकली हीरों से भरे घड़े को उसे दान में दिलवाया।

माधव का झूठा रोग भी कम हो गया। उसने दवाई खाना छोड़ दिया। सप्ताह भर में वह पहिले की तरह अच्छा हो गया। उसने कहा—"इस दान के कारण ही तो मैं मौत के मुँह से निकल गया हूँ।"

अपने वचन के अनुसार शंकरस्वामी ने अपनी लड़की का विवाह, शिव के साथ कर दिया। विवाह के होते ही माधव भी शंकर स्वामी का घर छोड़कर और किसी जगह रहने लगा। उसकी जगह शिव आकर रहने लगा।

कुछ दिनों बाद शिव ने ससुर से कहा—"मैं कब तक यहाँ पड़ा रहूँ! सिवाय दान में दिये हुये हीरों से भरे घड़े के मेरे पास कुछ नहीं है। इसलिये आप उसे रखकर हमें नक़द दे दीजिये। मैं और मेरी पत्नी अलग कहीं अपना घर बसा लेंगे।"

"उन हीरों की कीमत कौन जाने बेटा!"—शंकर स्वामी ने कहा।

"उनकी कीमत से मेरा क्या काम! उस घड़े में क्या रखा है, यह भी मैं नहीं जानता हूँ। उसे आप ही ने दिया था, आप ही ले लीजिये। आपके पास जो कुछ पैसा है, हमें दे दीजिये। मैं सोचूँगा कि मुझे यही दान मिला है। अगर आपको कुछ ज्यादह मिल भी गया तो आप कौन से पराये हैं!"—शिव ने कहा।

शंकर स्वामी ने कुछ न कहा। उसने भूमि में गाड़े हुये धन से भरे सात घड़े निकाले और शिव को दे दिये। उससे रसीद ले ली। जो कुछ लिखा-पढ़ी करनी थी, सो भी कर ली। शिव ने अपनी पत्नी के साथ अपना अलग घर बसाया। उस धन को शिव और माधव ने आपस में आधा आधा बाँट लिया।
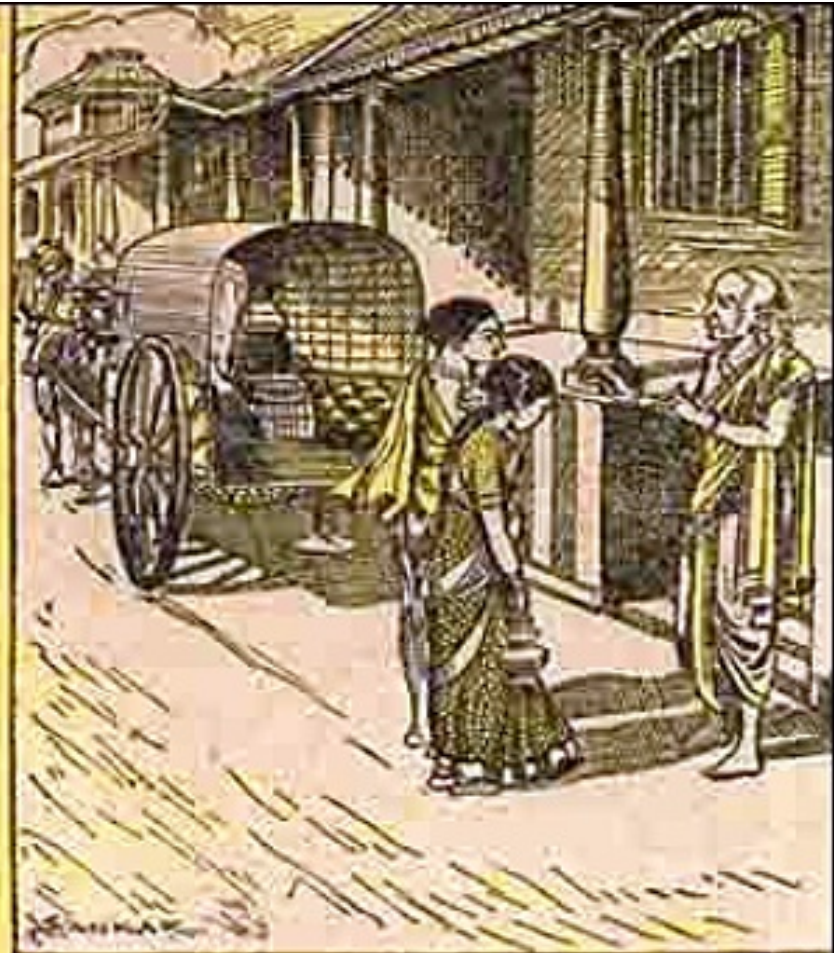
और कुछ दिन गुज़र गये। शंकर स्वामी को सूझा, क्यों न कुछ हीरों को बेच-बाचकर घड़ों को फिर से भरा जाय। उसने माधव के दिये हुये घड़े में से हीरों का हार निकाला और जौहरी के पास कीमत निश्चित करने के लिये ले गया।

"पंडित जी, यह सोना नहीं है, न हीरे ही। किसी धूर्त ने शीशे के टुकड़ों पर पीतल की कलाई पोत कर आपको धोखा दे दिया है।"—जौहरियों ने कहा।

यह सुनते ही शंकर स्वामी का कलेजा थम-सा गया। वह जल्दी जल्दी घर गया।

और घड़े में रखे सब जेवर-जवाहारातों को जौहरियों को दिखाने के लिये ले आया। जल्द उसे मालम हो गया कि उनमें एक तोला भी सोना न था।

शंकर स्वामी रोता-धोता दामाद के पास गया। "कितना धोखा! मेरा पैसा मुझे वापिस कर दो!"—उसने दामाद से कहा। उसे उसने बताया कि घड़े में सिर्फ़ शीशे के टुकड़े थे, और कुछ न था।

"तो क्या यह मेरी गल्ती है! हीरे-मोती बताकर मुझे क्यों वैसा दान दिल्वाया! मैं मठ में तपस्या किया करता था। तुमने ही मुझे इस गृहस्थ के गढ़े में धकेला है। मैं और क्या करूँ! मैंने तो उस घड़े को खोल्कर भी न देखा था। उसमें हीरे थे या पत्थर, यह तो तुम्हें मालम होना चाहिये, नहीं तो उस माधव को। मैं क्या जानूँ! मुझ से कुछ मत पूछो।"—शिव ने कहा। शंकर स्वामी माधव के पास भागा। माधव ने भी गुस्सा दिखाया।

"उस घड़े में हमारे बाप-दादाओं के जमा किये हुये जेवर-जवाहारात थे। मैंने उसको आपत्ति के समय एक अच्छे ब्राह्मण को दे दिया। और उस दान का ही इतना प्रभाव था कि मैं मरते मरते बच गया। शीशे पत्थर ले जाकर क्या मैंने किसी को जेवर-जवहरात कहकर बेचा है? यह ससुर और दामाद का मामला है। तुम्हीं दोनों आपस में जिम्मेवार हो। निबट लो।"

यह बात सुन शंकर स्वामी अपना-सा मुँह लेकर रह गया। उसे मालम हो गया कि गल्ती उसी की थी। उसके लोभ ने उसका ही सत्यानाश कर दिया था। वह पछताता पछताता घर चला गया।

काश्मीर देश में प्रवर नाम का एक नौजवान रहा करता था। वह एक अमीर का लड़का था। अच्छा पढ़ा-लिखा और समझदार था। उसे यात्रा करने की सूझी। आवश्यक धन और कीमती वस्त्र लेकर वह यात्रा पर निकल पड़ा। दुर्भाग्य से उसका चोरों से पाला पड़ गया। दिन दहाड़े चोरों ने उसको लूट लिया। उसका सारा रुपया-पैसा, कपड़े वगैरह सब छीन लिये। प्रवर के कपड़े पहिनकर चोर चम्पत हो गये और अपने कपड़े छोड़ते गये। वह बिचारा करता तो क्या करता? उसने चोरों के कपड़े पहिन लिये। दो-तीन दिन तक सफ़र कर शाम को वह एक शहर में पहुँचा।

अन्धेरे में प्रवर शहर की चारों बड़ी सड़कों पर घूमता-भटकता रहा। उससे न किसी ने कोई बात कही, न कुछ पूछा ही। अपनी हालत बताकर उसने जब किसी से खाना माँगने की सोची तो उसे शर्म आ गई। आखिर वह राजमहल के पासवाले अस्तबल में पहुँचा। भूख और प्यास के कारण वह बेहोश-सा हो गया।

उस देश के राजा का नाम जयसेन था। उसके एक लड़की थी, जिसका नाम कांचनवल्ली था। सौन्दर्य में वह तिलोत्तमा थी, और विद्या आदि में सरस्वती। जब वह सयानी हुई तो राजा ने उसकी पढ़ाई-लिखाई बन्द कर दी और उसकी सगाई भी कर दी। परंतु कांचनवल्ली इस हठ पर थी कि जब तक उसको उसके अनुरूप वर न मिलेगा, तब तक वह विवाह ही न करेगी। पिता का खोजा हुआ वर उसको कतई पसन्द न था। इसलिये कांचनवल्ली ने घर

श्री. पंडित घनश्याम प्रसाद मिश्र

से भागने की ठानी; तब तक वापिस न आने का निश्चय किया, जब तक उसको योग्य वर न मिल जाये।

परंतु यह काम बिना दूसरों की सहायता के वह अकेली न कर सकती थी। इसलिये राजकुमारी ने अपनी सेविका द्वारा मन्त्री के लड़के के पास खबर भिजवाई। मन्त्री के लड़के और कांचनवल्ली ने एक ही गुरु के यहाँ साथ शिक्षा पाई थी। छुटपन से दोनों एक दूसरे को चाहते थे। कांचनवल्ली ने मन्त्री के लड़के के पास कहला भेजा कि आधी रात के समय, राजमहल के बाहर, अस्तबल के पास वह दो घोड़ों को लेकर तैयार रहे। यह खबर पाकर भी मन्त्री का लड़का राजकुमारी की सहायता न कर पाया; चूँकि उस दिन राजा के अंतःपुर में नृत्य का प्रबन्ध किया गया था, उसका पिता ज़िद कर उसको वहाँ ले गया था।

जिस नृत्य ने मन्त्री के लड़के को न आने दिया था, उसी ने राजकुमारी को भाग जाने का अच्छा मौका दिया। उसने सिर दर्द का बहाना किया। जब और लोग नृत्य देखने में मस्त थे, वह ज़ंजीरों की मदद से राजमहल की चार-दीवारी पार कर गई और अस्तबल के पास पहुँची। अन्धेरे में उसको प्रवर मजे में सोता हुआ दिखाई दिया। उसको मन्त्री का लड़का समझकर राजकुमारी ने बाँह पकड़कर उठाया और कहा—"उठो, उठो! झट अन्दर जाकर दो घोड़े ले आओ।"

अंगड़ाइयाँ लेता हुआ प्रवर उठा। वह अन्दर से दो घोड़े ले आया। कांचनवल्ली एक घोड़े पर चढ़ गई। दूसरे पर सवार होकर प्रवर को साथ साथ आने के लिये कहा। दोनों थोड़ी देर में शहर पारकर हवा से बातें करने लगे।

इतने में सवेरा हुआ। कांचनवल्ली ने अपने घोड़े को एक तालाब के पास लाकर रोक दिया। थोड़ी देर में प्रवर भी पीछे पीछे उसके साथ आ मिला। उसको देखते ही कांचनवल्ली का मुँह फीका पड़ गया। रात भर जो उसके साथ आया था, वह मन्त्री का लड़का नहीं था। उस आदमी की शक्ल-सूरत से लगता था, जैसे कोई चोर हो। फटे-पुराने मैले कपड़े पहिने हुये था। दाढ़ी बढ़ी हुई थी। अपनी गल्ती जानकर कांचनवल्ली को बहुत दुःख हुआ, पर वह कर ही क्या सकती थी! अगर अब घर वापिस जाती तो पिता दण्ड देता।

कांचनवल्ली ने सिर उठाकर प्रवर की तरफ़ अच्छी तरह देखा तक नहीं। वह पत्थर की तरह बैठी रही। प्रवर ने भी उससे बातचीत न की। उसने भी नहीं बताया कि सचमुच वह कौन था। वह पासवाले पेड़ से दो दाँतून तोड़ लाया। एक राजकुमारी के सामने फेंक दी। दोनों ने दाँत साफ़ किये।

नित्य कृत्य पूरे कर दोनों फिर घोड़ों पर सवार हुए। थोड़ी देर में वे नदी के किनारे पहुँचे। नदी के किनारे एक किश्ती छूटनेवाली ही थी। कुछ लोग उस पर चढ़े हुए थे। एक बुढ़िया किश्ती पर मुफ़्त बैठने के लिये किश्तीवाले से प्रार्थना कर रही थी। किश्तीवाले ने बिठाने से इनकार कर दिया और किश्ती ले ही जानेवाला था कि नये मुसाफ़िरों को देखकर वह रुक गया।

प्रवर ने देखा कि किश्तीवाले ने बुढ़िया को मुफ़्त ले जाने से इनकार कर दिया था। उसके पास भी कानी-कौड़ी न थी। वह कांचनवल्ली की तरफ़ दया भरी दृष्टि से ताकने लगा। कांचनवल्ली उसके देखने का मतलब समझ गयी और अपनी

आंचल में से एक अशर्फी निकालकर उसने प्रवर के पैरों के पास फेंक दी। प्रवर ने किश्तीवाले को अशर्फी देते हुए कहा—"लो, यह लो, हमारे साथ इस बुढ़िया को भी ले चलो।" किश्तीवाला मान गया।

किनारे पर पहुंचकर बुढ़िया ने प्रवर से कहा—"बेटा, तुमने मुझे भी पार करवा दिया। मेरा इस संसार में कोई नहीं है। मुझे भी अपने साथ रख लो, दो चार दिन तुम्हारे लिये खाना पकाकर अपना ऋण चुका दूँगी।"

"अच्छा! तो आओ, हमारे साथ तुम भी ज़िन्दगी काटना, दादी।"—प्रवर ने कहा।

दोपहर होते तीनों एक नगर में पहुँचे। उस दिन वे धर्मशाला में रहे। वहीं खा-पीकर सो रहे। अगले दिन प्रवर बाज़ार में जाकर व्यापारियों से कहने लगा—"महाशयो! मैं ज्योतिष जानता हूँ। आप मुझे पैसा दीजिये, मैं आपको आज का भविष्य बता दूँगा, लाभ-नष्ट के बारे में जानकारी दूँगा।" कई व्यापारियों ने उसे अपनी जन्म-तिथि बतायी। उसने उसके

आधार पर उनका भविष्य बताया, व्यापारियों ने बदले में उसे पैसा दिया।

जब अगले दिन प्रवर बाज़ार गया तो बहुत से व्यापारी अपना भविष्य जानने के लिये उसके चारों ओर इकट्ठे हो गये। उसने उनका भविष्य बताया। उसकी कही हुई बातें सच भी निकलीं। उसके लिये आमदनी का एक रास्ता निकल आया। उसने उस शहर में एक मकान किराये पर ले लिया और वहीं रहने लगा।

प्रवर की प्रसिद्धि दिन प्रति दिन बढ़ती गई। यह जानकर कि हीरे मोतियों के परखने में प्रवर माहिर है, एक चौधरी ने उसको बड़ी तनख्वाह पर नौकर रख लिया।

बुढ़िया समझ रही थी कि कांचनवल्ली सचमुच उसकी पत्नी थी।

एक दिन उस देश के राजा के पास दक्षिण देश से कोई व्यापारी अति मूल्यवान हीरा लाया। राजा हीरे को देखकर बड़ा प्रभावित हुआ। उसने उसका मूल्य पूछा। राजा की इच्छा को देखकर व्यापारी ने कहा—"करोड़ रुपये।" बिना पारखियों की सलाह के राजा इतना रुपया खर्च कर हीरा खरीदना नहीं चाहता था। इसलिये उसने शहर के जौहरियों को बुलवाया और उनसे हीरे का दाम पूछा। जो जिसके जी में आया, उसने वही दाम बताया—किसी ने पिछत्तर लाख कहे तो किसी ने दो करोड़। वह जौहरी भी आया, जिसके यहाँ प्रवर नौकरी कर रहा था। प्रवर को हीरा दिखाकर उसने उसका दाम पूछा।

"इसका दाम सिर्फ़ एक रुपया है। वह भी इसको काटने-छांटने की मज़दूरी के लिये।"—प्रवर ने बताया।

"सिर्फ़ कह देने से क्या होता है, साबित करके दिखाओ!"—वह व्यापारी

गला फाड़ फाड़कर चिल्लाने लगा। प्रवर ने लोहे की एक पटरी मँगवाई और हीरे को उस पर मारा। क्योंकि वह केवल एक शीशे का टुकड़ा था, झट उसके टुकड़े टुकड़े हो गये। सब को यह देखकर आश्चर्य हुआ।

उसी दिन राजा ने प्रवर को अच्छे वेतन पर अपने दरबार में नौकर रख लिया। क्योंकि उसकी सलाह के कारण राजा को कई बार लाभ हुआ था, इसलिये उसकी शोहरत बढ़ने लगी।

इसके थोड़े दिनों बाद राजा का मन्त्री मर गया। उसकी जगह भरने के लिये, राजा को प्रवर के अतिरिक्त और कोई व्यक्ति न दिखाई दिया। राजा ने उसको मन्त्री के पद पर नियुक्त कर उसका सम्मान किया।

जब वह मन्त्री बना दिया गया तो सब कोई उसकी निजी बातों के बारे में भी उत्सुकता दिखाने लगे। रानी ने धोबिन से यह मालूम कर लिया कि मन्त्री की पत्नी बहुत ही सुन्दर है। प्रवर के घर में भी वही धोबिन काम करती थी। मन्त्री की पत्नी बहुत ही सुन्दर है, यह राजा को भी रानी द्वारा मालूम हुआ।

"प्रवर तो आज मन्त्री हुआ है। पर जब वह मामूली आदमी था, उसका इतनी सुन्दर स्त्री से कैसे विवाह हुआ!" राजा को सन्देह होने लगा। स्वयं यह देखने के लिये कि मन्त्री की पत्नी वास्तव में कितनी सुन्दर है, राजा ने एक चाल चली। एक बार उसने प्रवर को महल में दावत दी और रानी द्वारा भोजन परोसवाया।

राजा का मतलब प्रवर समझ गया। उनका आतिथ्य स्वीकार करने के बाद यह उसके लिये आवश्यक था कि वह भी राजा को, अपने घर में दावत दे और लोग

जिसे उसकी पत्नी समझ रहे हैं, उससे भोजन परोसवाये। पर जब उसकी वह पत्नी नहीं है, तो कैसे वह किसी को बुलाकर उससे कहे—"देखो, इन्हें भोजन परोसो।"

इसी उधेड़बुन में प्रवर लेटा हुआ था कि बुढ़िया ने आकर कहा—"उठो, बेटा! आओ खाना खा लो।"

"दादी मुझे भूख नहीं लग रही है, तुम लोग खा लो।"—प्रवर ने कहा।

कांचनवल्ली अपनी सूक्ष्म बुद्धि से जान गई कि उसी के कारण प्रवर किसी समस्या में उलझा हुआ है। "जो कुछ करवाना चाहें, कह कर करवा क्यों नहीं लेते, दादी! फ़ालतू माथापची से क्या फ़ायदा!"—उसने कहा।

प्रवर यह बात सुनकर बहुत सन्तुष्ट हुआ। भोजन के लिये बैठते हुये उसने कहा—"बात यह नहीं है दादी! आज राजा ने मुझे भोजन के लिये बुलाकर रानी द्वारा भोजन परोसवाया। उनको दावत देकर हम उनका अगर आतिथ्य न करें, तो क्या अच्छा होगा?"

"मैं कोई ऐसी मूर्ख नहीं हूँ कि खाना आदि भी न बनाना न आये। कह दो दादी कि मैं उस रानी से कोई कम नहीं हूँ।"
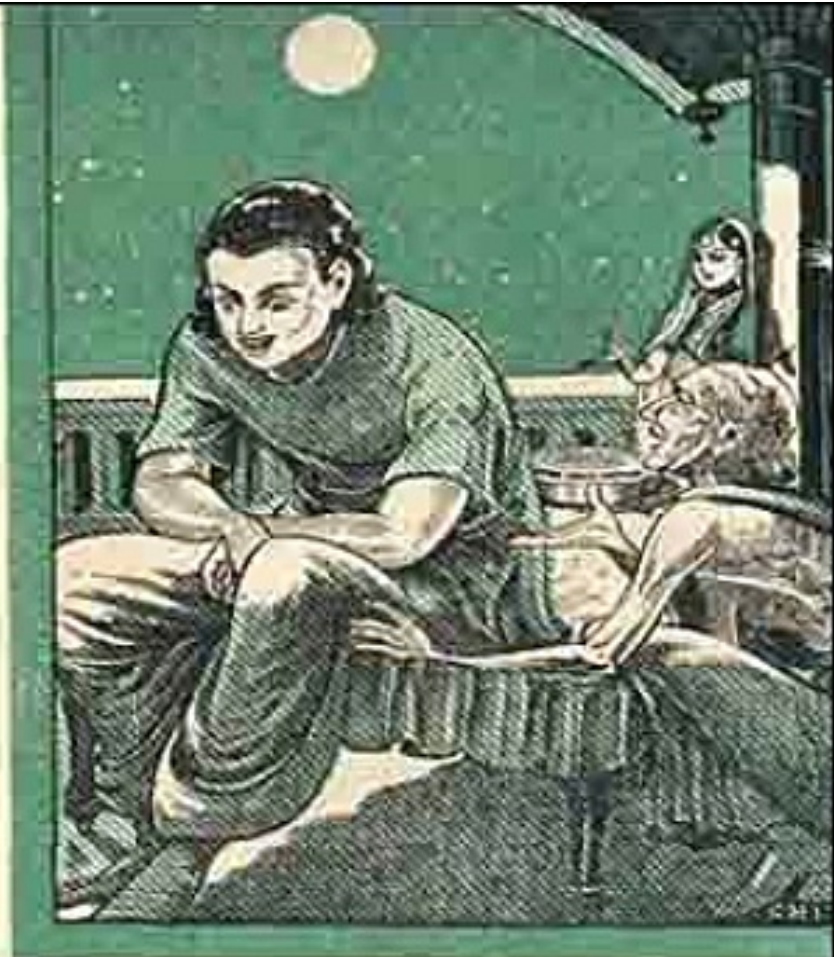
अगले दिन प्रवर ने राजा को भोजन का न्योता दिया। कांचनवल्ली ने भरसक कोशिश कर अच्छा खाना तैयार किया। एक प्रकार की साड़ी, जेवर, वेणी पहिन कर उसने पहिले खाना परोसा। फिर अन्दर जाकर दूसरे क्षण में, एक और साड़ी, जेवर वेणी आदि पहिन भोजन परोसा।

राजा ने सन्तोष के साथ पेट भर भोजन किया। घर जाकर राजा ने रानी से कहा—"हमारे मन्त्री की एक पत्नी नहीं, दो पत्नियाँ

है। दोनों हीरे जैसी हैं! क्या सौन्दर्य... क्या नज़ाकत...!"

रानी ने कहा—"परसों समुद्र में स्नान करने के लिये मन्त्री को अपनी पत्नियों को साथ लेकर आने के लिये कहिये।"

प्रवर के सामने अच्छी समस्या पैदा हो गई। पराई स्त्री से रसोई बनवाकर दूसरों को भोजन बँटवाना तो ऐसी कोई बड़ी गलती नहीं है, पर साथ स्नान करने के लिये कहना, क्या अच्छा होगा! अगर पहिले ही कह देता कि विवाह नहीं हुआ है तो बात इतनी दूर पहुँचती ही नहीं। वह तो उसका नाम तक नहीं जानता था, फिर समुद्र में स्नान करने के लिये कैसे ले जाता!

यही बात सोचता प्रवर लेटा हुआ था कि बुढ़िया ने फिर प्रवर को भोजन के लिये बुलाया। "मुझे भूख नहीं है दादी! तुम लोग खा लो"—प्रवर ने कहा।

"दादी! इनसे यह तो पूछो कि छोटी-मोटी बात पर ये उपवास क्यों किया करते हैं! जो एक काम कर सकती है तो क्या दूसरा काम नहीं कर सकती! जो विठाकर पाल-पोस रहे हैं, उनको कह कर काम

करवाने में क्यों आपत्ति है? पूछो दादी।"—कांचनवल्ली ने कहा।

प्रवर ने राजा की इच्छा के बारे में दादी से कहा।

"यह कौन-सी ऐसी बड़ी समस्या है दादी! सात पालकियाँ, सात साड़ियाँ, सात जाकेटें, एक ही तरह के सात जोड़ी जेवर मँगाने के लिये कहो। समुद्र के किनारे सात दरवाज़ोंवाला तम्बू लगाने के लिये कहो।"—कांचनवल्ली ने कहा।

मन्त्री की पालकी के साथ साथ सात पालकियाँ आईं। एक में कांचनवल्ली बैठी हुई थी और बाकी में, उसके वस्त्र, गहने, वग़ैरह रखे हुये थे।

जब राजा और रानी नहाने की पोशाक पहिनकर स्नान कर रहे थे, कांचनवल्ली तम्बू के पहिले दरवाज़े में से एक पोशाक पहिन कर निकली और प्रवर के साथ स्नानकर वापिस चली गई। फिर थोड़ी देर बाद, दूसरी पोशाक पहिनकर खेमे के दूसरे दरवाज़े से आई और स्नान करके चली गई।

यह सब देख रानी ने कहा—"मन्त्री की तो सात पत्नियाँ हैं और सब की सब बहुत सुन्दर हैं।"

अगले दिन रानी ने सेविका को सात गोटेदार साड़ियाँ, और अन्य उपहार देकर कहा—"इनको मन्त्री की पत्नियों को देकर उनके नाम मालूम करके आओ।"

यह जानकर कि रानी ने दासी के हाथ उपहार भेजे हैं; कांचनवल्ली ने-बुढ़िया को कुछ कहकर उसके पास भेजा। बुढ़िया ने दासी से कहा—"रानी गल्ती कर रही हैं। मन्त्री जी की आठ पत्नियाँ हैं। उनके नाम वही हैं, जो कृष्ण की पत्नियों के हैं।

दासी रानी के पास आकर आठवीं पत्नी के लिये भी उपहार लायी। कांचनवल्ली

ने आठों पोशाकों को एक एक करके पहिना और भिन्न भिन्न गले से दासी से बातचीत कर, और उपहार लेकर चली गई।

कुछ दिनों बाद, कांचनवली ने बुढ़िया को खूब समझा-बुझाकर कहा कि भोजन करते समय प्रवर को हर चीज़ अधिक परोसे।

"यह क्या दादी? आज इस तरह परोस रही हो? यह सब खाने के लिये है या फेंकने के लिये?"—आश्चर्य से प्रवर ने बुढ़िया से पूछा।

"अगर ज्यादह है तो कह दो दादी कि और भी खानेवाले हैं।"—कांचनवली ने परदे में से कहा।

तब जाकर प्रवर को कांचनवली के दिल की बात मालूम हुई। जब वह भोजन कर बैठा, तो तश्तरी में कांचनवली ने पान-सुपारी लाकर दी।

"हमारी शादी कब है?"—प्रवर ने पूछा।

"देखिये। मैं अपने योग्य वर ढूँढ़ने के लिये घर से निकली थी। भगवान ने मुझे उसी समय आपको दिखाया। पर मैंने आँखें मूँद रखी थीं। हीरे को भी शीशे का टुकड़ा समझे हुई थी। निस्सहाय स्थिति में आपके साथ चली आई। पर आपने किंचित मात्र भी मेरी मर्यादा भंग न की। आपसे बढ़कर उदार व्यक्ति मुझे इस संसार में और कहाँ मिलेगा? आप तो नहीं जानते होंगे, पर मैं बहुत दिनों से आपकी पत्नी ही हूँ।"—कांचनवली ने कहा।

यह सुन प्रवर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने राजा से कहा कि वह विवाह करने जा रहा है। राजा कांचनवली की होशियारी पर चकित रह गया।

भयंकर द्वीप
धारावाहिक उपन्यास
अगस्त के अंक से शुरू किया जायगा !

रंगीन चित्र-कथा : चित्र - १

पहले कभी चीन में किसी पहाड़ी प्रान्त में च्वान्ग नाम का एक नौजवान किसान रहा करता था। वह रात-दिन पसीना बहाकर बड़ी मेहनत करता था।

कमाने को तो वह बहुत कमाता था; पर वह जो कुछ कमाता, वह सब राजा को कर चुकाने में ही चला जाता था। ऐसी हालत में च्वान्ग क्या जमा कर पाता? शादी कब करता? और वह सुखी कैसे रहता? अड़ोस-पड़ोस के लोग च्वान्ग की हालत पर तरस खाकर सहानुभूति के साथ गाते :

"हमारे राजा के किले में धन-धान्य भरा पड़ा है;
पर बेचारे च्वान्ग को एक कौड़ी भी नहीं मिलती!
अपनी अनेक रानियों के साथ राजा बहुत खुश है;
पर च्वान्ग को तो अब लड़की एक भी नहीं मिलती!!"

एक दिन मूर्तियाँ बनानेवाला एक निपुण कलाकार च्वान्ग के यहाँ आया। वह ऐसे चित्र बनाता कि उन्हें देखकर सजीवता का भ्रम हो जाता!

इस चित्रकार ने पहले से च्वान्ग के बारे में सब कुछ सुन रखा था। जब उसने च्वान्ग का घर देखा, तो तुरन्त उसकी सारी कहानी उसे मालूम हो गई! उस पर दया आई और चित्रकार ने जो सजीव और खूबसूरत लड़की का एक चित्र खींचा, और वह सचमुच मालूम होती थी, उसे च्वान्ग को देकर चला गया। च्वान्ग ने उस खूबसूरत लड़की की तस्वीर को अपने घर में टाँग दिया। हमेशा वह उसकी तरफ़ देख-देखकर तन्मय हो जाता था!

पर घर में बैठकर हमेशा उसकी तरफ़ ताकते रहने से उसका पेट तो नहीं भर सकता! इसलिये उसने पहले की तरह खेत में जाकर काम करने की सोची।

जब से उस खूबसूरत लड़की की तस्वीर दीवार पर टाँगी थी कि उसके मन में तरह तरह भावनाएँ उमड़कर आने लगीं। दूसरे दिन खेत जाते हुए च्वान्ग ने उस चित्र की तरफ़ देखा और बड़ी साँस ली। उसने सोचा—"अगर ऐसी सुन्दरी मेरे घर में रहकर रसोई आदि में मदद देती तो कितना अच्छा होता....!"

फोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

सितम्बर १९५५ :: पारितोषिक १०)

कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें।

ऊपर के फोटो के लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर संबन्धित हों। परिचयोक्तियाँ पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिख कर निम्नलिखित पते पर भेजनी चाहिये।

फोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता
चन्दामामा प्रकाशन
वडपलनी :: मद्रास - २६

जुलाई – प्रतियोगिता – फल

जुलाई के फोटो के लिये निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं। इनके प्रेषिका को १० रु. का पुरस्कार मिलेगा।

पहिला फोटो : आता है याद मुझको गुज़रा हुआ ज़माना !

दूसरा फोटो : वह झाड़ियाँ चमन की वह मेरा आशियाना !!

श्री. केदारनाथ, चरणदास लाइन, बजार ईस्ट, पूना - ३

समाचार वगैरह

भूगर्भ शास्त्र के विशेषज्ञों ने बताया है कि कृष्णा नदी के किनारे हीरों के मिलने की सम्भावना है। कृष्णा नदी आन्ध्र राज्य की एक प्रमुख नदी है। पहिले किसी ज़माने में इस इलाके में, कहा जाता है, हीरों की खान थी और उनका अच्छा व्यापार होता था। दक्षिण में गोलकोण्डा भी हीरों के लिये प्रसिद्ध है।

• • •

उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के इलाकों में अब भी डाकू-डकैतों का आतंक है। इधर सरकार ने डाकुओं के कई गिरोहों को गिरफ़्तार कर लिया है और कइयों को गोली से उड़ा भी दिया है।

पिछले दिनों, समाचार मिला है कि फ़तेहगढ़ के सेन्ट्रल जेल से, बनावटी वारन्ट बनाकर, बारह डाकू और हत्यारे भाग निकले, जिन में से कई बदनाम मानसिंह डाकू के गिरोह से सम्बन्धित समझे जाते हैं। परन्तु मानसिंह, अन्यत्र पुलिस के हाथों स्वयं मारा गया।

• • •

अफ़्रीका के जङ्गलों में, जो विचित्र जानवरों के लिये प्रसिद्ध है, एक और विचित्र प्राणी पाया गया। यह प्राणी आकार में लोमड़ी की शक्ल का है। मगर उसकी पूँछ नहीं होती। वह कई दिनों तक कुछ नहीं खाता। उसे मांस से भी

परहेज़ है। वैज्ञानिक इस प्राणी के बारे में खोज कर रहे हैं।

• • •

वीतनाम में गृह युद्ध छिड़ गया है, जिसके फलस्वरूप वहाँ के राजा बाओ दाई को पद-च्युत कर दिया गया है। वीतनाम में पिछले कई सालों से फ्रान्सीसी साम्राज्यवादियों के विरुद्ध युद्ध चलता आ रहा है।

वीतनाम को हिन्द-चीन भी कहा जाता है। किसी जमाने में यहाँ भारत के हिन्दुओं ने अपने उपनिवेश बसाये थे। अब भी हिन्दू मन्दिरों के अवशेष वहाँ मिलते हैं, जो उस देश के दर्शनीय स्थलों में गिने जाते हैं।

• • •

हिन्दी को सरकारी भाषा का परिधान देने के लिये, एक आयोग की स्थापना की जा रही है, जिसके अध्यक्ष, बम्बई के भूतपूर्व मुख्य मन्त्री श्री बी. जी. खेर होंगे। आयोग की स्थापना संविधान के अनुसार हो रही है।

आयोग इस विषय की जाँच-पड़ताल करेगा कि कैसे अंग्रेजी की जगह पर हिन्दी प्रचलित की जाये, व अहिन्दी भाषी प्रान्तों में हिन्दी का प्रचार किस आधार पर हो।

• • •

बम्बई के 'चिल्ड्रन्स क्लब' के १२० बालक-बालिकाएँ ता. १७ मई '५५ के सवेरे 'चन्दामामा' कार्यालय में आये। उन बच्चों ने 'चन्दामामा' की विविध शाखाओं में जाकर वहाँ के कार्य के बारे में बड़ी दिलचस्पी के साथ जानकारी हासिल कर ली। दोपहर को उनको दावत दी गयी। वे शाम तक 'चन्दामामा' के अहाते में खेलते-कूदते रहे।

ग्रह

सूर्य के व्यास की लंबाई ८६७,०० मील है। सूर्य से सब से दूर जो ग्रह है, उसका नाम प्लूटो है। सूर्य से इसकी दूरी ३६७ करोड़ ५० लाख मील है।

सूर्य के सब से समीप रहनेवाला ग्रह बुध है। सूर्य से इसकी दूरी ३,५९,८७,००० मील है।

बुध के बाद, जहाँ तक सूर्य के सामीप्य का सम्बन्ध है, शुक्र ग्रह आता है। यह सूर्य से ६,७२,४५,००० मील है। इसी प्रकार भूमि सूर्य से ९,२९,६५००० मील है।

कुज ग्रह सूर्य से १४,१६,५०,००० मील दूर है।

गुरु ग्रह सूर्य से ४८,३६,७८,००० मील दूर है।

शनि ग्रह सूर्य से ८८,६७,७९,९०० मील दूर है।

युरेनस ग्रह गुरु सूर्य से १७८ करोड़ ३० मील दूर है।

नेप्ट्यून ग्रह सूर्य से २७९ करोड़ लाख मील दूर है।

प्लूटो ग्रह सूर्य से ३६७ करोड़ ५० लाख मील दूर है।

सूर्य का प्रकाश सूर्य मण्डल के सभी ग्रहों पर समान रूप से नहीं पड़ता। जितना प्रकाश बुध पर पड़ता है, उससे लगभग चार गुना शुक्र पर, करीब करीब नौ गुना भूमि पर पड़ता है।

जितना प्रकाश भूमि पर पड़ता है, उससे आधा भी, भूमि से परे स्थित कुज पर नहीं पड़ता। गुरु ग्रह को पहुँचनेवाला प्रकाश भूमि पर पहुँचनेवाले प्रकाश का ९०० भाग है; और प्लूटो को पहुँचनेवाले प्रकाश का १५०० भाग है।

इसलिए हमें यही समझना होगा कि सिवाय उन ग्रहों के जो सूर्य के समीप हैं, बाकी सब ग्रह अन्धकार में ही चक्कर काट रहे हैं।

Printed by B. NAGI REDDI at the B. N. K. Press Ltd., Madras 26, and Published by him for Chandamama Publications, Madras 26. Controlling Editor: SRI 'CHAKRAPANI'

Photo by A. L. Syed

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

यह झाड़ियाँ चमन की
यह मेरा आशियाना !!

प्रेषक
श्री. केदारनाथ, पूना

रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र – १

चन्दामामा
माँ - बच्चों का मासिक पत्र
1st June
6 as

Photo by Anant Desai

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

अरे, सुनो खबर !

प्रेषक
कैलाश, खरगपुर

बिड़ला
कटेली चम्पा
केश तैल
अनुपम गन्ध
एवं केश शोभा
केलिये

वीर-बच्चा
बच्चों की ताकत के लिये
अनुपम टानिक
VEER BACHHA
बिड़ला लेबोरेटरीज, कलकत्ता ३०

चन्दामामा

विषय - सूची

*

चन्दामामा

संचालक : चक्रपाणी

आज से एक सौ अट्ठानवें साल पहिले इसी महीने में, प्लासी में वह ऐतिहासिक युद्ध हुआ, जिसने भारत के इतिहास के रुख को बदल दिया। सन् १७५७ से अंग्रेज़ों के पाँव भारत में जमने लगे और मुसलमानों का प्रभाव धीमे धीमे कम होने लगा।

पर अब भारत पर न अंग्रेज़ों का राज है, न किसी और विदेशी का ही। हमारा देश अब स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रता के आधार में सामाजिक नियंत्रण और वैयक्तिक चरित्र निहित हैं।

बच्चों को अपना चरित्र बनाना चाहिये, ताकि भारत की स्वतन्त्रता स्थाई बने। देश की उन्नति बच्चों पर निर्भर है। हर बालक-बालिका को अपना कर्तव्य निभाना चाहिये।

वर्ष : 6 जून 1955 अङ्क : 10

लोमड़ी और भेड़िया

उम्र भले ही बीत चले या,
शक्ति न तन में शेष रहे;
पर प्राणी निज कर की सत्ता,
क्यों छोड़ न पाता—कौन कहे?

सिंह एक बल औ' मद खोकर,
लाचार बुढ़ापे के कारण था।
मुरझाया-सा सुस्त चेहरा,
पहले जैसा जोश न अब था।

दी आज्ञा उसने जीवों को—
"औषधि लाओ खोज कहीं से;

जिससे खोये बल को पाकर,
वन का शासन करूँ खुशी से!"

शासक की आज्ञा का शासित,
कर सकते प्रतिरोध भला क्या?
लाने लगे सभी प्राणी तब
खोज-खोज कर जानें क्या-क्या!

बैठी लेकिन रही लोमड़ी,
हिली-डुली भी नहीं ज़रा वह;
वैर पुराना क्यों न साध लूँ—
देख भेड़िये ने सोचा यह।

चुपके से कुछ कहा कान में,
पास सिंह के उसने जाकर;

"खाऊँगा अब तुझे लोमड़ी!"—
गरजा सिंह यकायक सुनकर!

उसी समय इक हाथी आया,
पास लोमड़ी के गुज़रा वह;
शत्रु भेड़िया ही इसका है,
जान गया यह भी क्षण में वह!

बहुत विनय से दीन-भाव से,
हाथी ने जा कहा सिंह से—
"कर आया हूँ देवी-पूजन,
रहें आप रक्षित ही जिससे।

खाल भेड़िये की यदि ओढ़ें,
और रक्त भी पियें उसी का;

* * *

तो फिर आयेगी तरुणाई,
उबल पड़ेगा जोश रगों का!"

झपट भेड़िये पर चढ़ बैठा,
सुनते ही यह सिंह गरजकर;
फाड़ कलेजा पल में उसका,
रक्त लिया पी सारा जी-भर!

राज्य तुम्हारा रूप भयङ्कर,
नहीं क्षमा का नाम यहाँ है;
ईर्ष्या और असूया निष्फल,
होते शासित ज़ेर सदा हैं!!

मुख - चित्र

इक्ष्वाकु देश में सगर नाम का राजा हुआ करता था। उसकी दो पत्नियाँ थीं। एक का एक ही लड़का था। उसका नाम असमंजस था। पिता उसकी धूर्तता न सह सका, और उसको राज्य से बाहर निकाल दिया। दूसरी पत्नी के छः हज़ार लड़के थे। वे बहुत घमंडी थे।

सगर राजा ने एक बार अश्वमेध यज्ञ करना शुरु किया। परन्तु यज्ञ का अश्व गायब हो गया। घोड़े को ढूंढ़ते ढूंढ़ते छः हज़ार लड़के पाताल लोक में पहुँचे। जब उन्हें कपिल ऋषि के पास घोड़ा दिखाई दिया तो उन्होंने शोर करना शुरू कर दिया कि ऋषि ने ही घोड़ा चुराया है। जब महर्षि ने क्रोध में उनको शाप दिया तो वे वहीं के वहीं भस्म हो गये।

अन्त में राजा सगर के अँशुमन्त नाम का केवल एक पौत्र ही बचा। उसका पट्टाभिषेक कर राजा सगर तपस्या करने चला गया। इस अँशुमन्त का पोता ही भगीरथ था। कपिल महर्षि द्वारा भस्म किये गये अपने पितामहों को जिलाने का उसने निश्चय किया।

उन्हें जिलाने के लिये पवित्र गँगा का पानी आवश्यक था। भगीरथ ने हज़ारों वर्ष तपस्या करके गँगा देवी से प्रार्थना की। गँगा देवी ने प्रत्यक्ष होकर कहा—"बेटा, अगर मैं उतर आई तो भूदेवी मेरा भार सह न सकेगी। अतः तुम परमेश्वर से प्रार्थना करो कि वह मेरा भार सहन कर ले। उनसे यह वर माँगो।"

भगीरथ ने शिव की तपस्या कर वर पाया। बाद में गँगा शिव के केशों में कूदी, फिर केशों में से भगीरथ के पीछे पीछे वह भूमि पर प्रवाहित होने लगी।

इतना प्रयत्न कर भगीरथ गँगा को पाताल लोक ले गया, और वहाँ राजा सगर के छः हज़ार पुत्रों को जिलाया। इसी वजह से "भगीरथ प्रयत्न" का मुहावरा चल पड़ा है। गँगा का नाम भी इसी वजह से भागीरथी है—और शिव का नाम गँगाधर। इस कथा को ऋषियों ने युधिष्ठिर को सुनाया।

विचित्र जन्मपत्री

कलिंग राज्य में कई बड़े बड़े नगर थे। उनमें से "दान्तीपुर" नामक नगर का कलिंग राजा था। उसके दो लड़के थे। बड़ा कलिंग और छोटा कलिंग उनके नाम थे। उनकी जन्मपत्रियों को बनानेवाले ज्योतिषियों ने यों कहा—

"पिता के बाद बड़ा लड़का ही गद्दी पर बैठेगा। छोटे लड़के की बड़ी विचित्र जन्मपत्री है। वह जीवन भर सन्यासी बना फिरेगा। परन्तु उसके एक पुत्र पैदा होगा, जो कभी महाराजा होगा।"

कुछ दिनों बाद कलिंग राजा की मृत्यु हो गई। बड़ा लड़का गद्दी पर बैठा। छोटे लड़के को राज प्रतिनिधि का पद मिला। उसको भलीभांति ज्योतिषियों की बात याद थी। वह सोचने लगा कि किसी दिन उसका लड़का महाराजा होगा। इसी ख्याल से वह भाई की आज्ञा की अवहेलना करने लगा। वह उद्दण्ड और उच्छृंखल हो गया। राजा ने आज्ञा दी कि छोटे भाई को कैद कर लिया जाय।

उन्हीं दिनों बोधिसत्व, मनुष्य रूप में पैदा होकर कलिंग राज्य के एक मन्त्री के पद पर काम कर रहा था। बड़े कलिंग के ज़माने में ही वह काफ़ी वृद्ध हो चुका था। चूँकि वह उस परिवार का श्रेयोभिलाषी था, इसलिये उसने छोटे कलिंग के पास जाकर, राजाज्ञा के बारे में कहा। छोटे भाई होनेवाले अपमान से शंकित होने लगा।

"दादा! सब तरह से तुम ही मेरे एक हितैषी हो। उस दिन ज्योतिषी की बतायी हुई बात तो तुम्हें याद है न! अगर वह सच निकली तो मेरी इच्छा को पूरी करने की जिम्मेवारी तुम पर है। यह लो—मेरे नाम

की अंगूठी, मेरा दुशाला, मेरी तलवार। इन तीनों को लेकर, जो तुम्हारे सामने आया, उसी को मेरा पुत्र जानना। जो कुछ मदद तुम कर सको, सो करना।" तब वह जङ्गलों में भाग गया।

* * *

मगध राजा की एक इकलौती लड़की थी। उसकी जन्मपत्री बनानेवाले ज्योतिषियों ने कहा—"यह एक बड़ी विचित्र जन्मपत्री है। यह राजकुमारी अपना जीवन एक सन्यासिनी के रूप में बितायेगी। परन्तु उसके एक लड़का होगा, जो महाराजा होगा।"

इस बात का पता लगते ही, दूल्हे राजकुमारी से विवाह करने के लिये आपस में होड़ करने लगे। राजा द्विविधा में पड़ गया। अगर वह अपनी लड़की की एक से शादी करता है, तो दूसरों के लिये बदला लेना असान हो जाता है। और कोई चारा नहीं था। वेष बदलकर पत्नी और पुत्री को साथ लेकर वह जङ्गल में भाग गया।

नदी के किनारे, खाली जगह पर एक छोटा-सा कुटीर बनाकर, वे तीनों अपना जीवन बिताने लगे। उनकी कुटिया के कुछ दूर आगे ही कलिंग राजा के पुत्र की झोंपड़ी थी।

एक दिन पुत्री को कुटिया में छोड़कर, मगध के राजा और रानी कन्द, मूल, फल आदि, खोजने के लिये बाहर चले गये। जब वे बाहर गये हुये थे, राजकुमारी ने तरह तरह के फूल चुनकर एक माला बनाई।

कुटिया के बगल में, गंगा नदी के किनारे एक आम का पेड़ था। मगध की राजकुमारी उस पेड़ पर चढ़ गई और पेड़ पर से माला नदी में फेंककर तमाशा देखने लगी।

फूलों की माला बहते बहते नहाते हुये छोटे कलिंग के पास गई और उसके गले में पड़

गई। माला को उतारकर वह गौर से देखने लगा। "क्या सुन्दर माला है! कितने तरह के फूल हैं! इतनी सुन्दर माला बनाने वाली ज़रूर कोई बहुत सुन्दर स्त्री होगी। इस जङ्गल में भला सुन्दर स्त्रियों को क्या काम!" उसके मन में तरह तरह के विचार उठने लगे।

वह यह सब सोच ही रहा था कि किसी का मीठा स्वर सुनाई दिया। उसने इधर उधर देखा तो उसको टहनी पर बैठी, गाती हुई एक युवती दिखाई दी।

राजकुमारी को देखकर कलिंग अपनी सुध भूल गया और उससे हाल-चाल पूछने लगा। आखिर उसने राजकुमारी को बताया कि वह उससे विवाह करना चाहता है। तब राजकुमारी ने कहा—"आप तो शायद किसी ऋषि की सन्तान हैं, और हम क्षत्रिय हैं।"

तुरन्त कलिंग ने कहा—"मैं भी क्षत्रिय हूँ।" और उसने अपनी सारी जीवनगाथा सुना दी। तब राजकुमारी ने भी अपनी कहानी सुनाई।

दोनों मिलकर, मगध राजा के पास गये। मगध राजा ने उनसे सारा वृत्तान्त मालूम कर, निश्चय कर लिया कि वह ही

हमारी लड़की के लिये उपयुक्त वर है। छोटे कलिंग का मगध राजा की पुत्री के साथ विवाह हो गया।

कुछ समय बाद उनके एक लड़का पैदा हुआ। क्योंकि लड़का बहुत ही होनहार और प्रभावशाली लगता था, इसलिये उसका नाम उन्होंने "विजय कलिंग" रखा और उसको बड़े लाड़-प्यार से पालने लगे।

कई दिनों बाद एक बार कलिंग ने जन्म-पत्रियाँ देखीं। हिसाब से पता लगा कि उसके भाई बड़े कलिंग की तब तक मृत्यु हो चुकी होगी।

तब कलिंग ने अपने लड़के को पास बुलाकर कहा--"कुमार! तू अपनी ज़िन्दगी इन जङ्गलों में बिताने के लिये नहीं पैदा हुआ है। मेरा भाई, बड़ा कलिंग दान्तीपुर का राजा है। उस राज्य का उत्तराधिकारी तू ही है। तुरंत जाकर उस राज्य के सिंहासन पर आसीन हो जा।" उसने वृद्ध मन्त्री का परिचय कराकर उसको तीनों निशानियाँ देकर, आशीर्वाद देकर भेज दिया।

माँ-बाप से, नाना-नानी से विजय कलिंग ने विदा ली और दान्तीपुर पहुँचकर, वृद्ध मन्त्री से मिला।

तब तक छोटे कलिंग के अनुमान के अनुसार उसका भाई मर चुका था।

वृद्ध मन्त्री ने दरबार बुलवाया। दरबारियों के सामने जब उसने विजय कलिंग का परिचय कराया तो उनके संतोष और आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

वृद्ध मन्त्री के रूप में काम करते हुये बोधिसत्व की सलाह के अनुसार विजय कलिंग ने बहुत समय तक काशी का परिपालन कर अपने पूर्वजों की कीर्ति वृद्धि की।

जलीलकड़ियाँ

धारा नगर में जब राजा भोज कवि पंडितों का आदर करता हुआ राज्य कर रहा था, उस समय मालव देश में एक बहुत ही गरीब ब्राह्मण रहा करता था। उस ब्राह्मण को न कविता आती थी, न उसमें पांडित्य ही था। इसलिये वह राजा भोज का सत्कार नहीं पा सकता था। पर यह सोचकर कि अगर कालिदास जैसे प्रमुख कवि ने उसकी सहायता करनी चाही तो उसके भाग्य भी चमक सकते हैं, वह धारा नगर के लिये पैदल चल पड़ा। वहाँ जाकर वह कालिदास से मिला। कालिदास ने उसकी दुःस्थिति के बारे में सुनकर उसको सलाह दी—"आप मौनव्रत रखकर कल दरबार में आइये। खाली हाथ न आइये; कोई न कोई भेंट राजा के लिये लाइये। अगर आपका भाग्य अच्छा रहा, तो हो सकता है कि आपको कुछ मिल मिला जाय!"

ब्राह्मण यह सलाह सुनकर खुश हुआ। उसने कहीं से एक ईख ली, उसके टुकड़े टुकड़े कर एक गठरी में बाँध लिया। उसने उस रात को सराय में ही भोजन किया। गठरी नज़दीक रखकर दुपट्टा बिछाकर चबूतरे पर आराम से सो गया।

सराय शहर के कुछ बाहर थी। हर रोज़ वहाँ सोने के लिये और मौका लगा तो भोजन प्राप्त करने के लिये कई व्यक्ति आया करते थे। वहाँ एक शरारती लड़का भी आया जाया करता था।

श्री रघुनाथ त्रिपाठी

उसे मालूम हो गया कि ब्राह्मण ने गठरी में ईख के टुकड़े बाँध रखे हैं। ब्राह्मण को सोता पा उस शरारती लड़के ने धीरे धीरे गठरी खोली, ईख के टुकड़े निकाले और उनकी जगह जलाकर बुझाई हुई काली लकड़ी के टुकड़ों को रख, गठरी बाँध वह चम्पत हो गया।

ब्राह्मण यह धोखा न जान सका। वह नित्य कृत्य से निवृत्त होकर सीधे राज दरबार में पहुँचा।

राजा भोज भरे दरबार में बैठा था। कालिदास वगैरह प्रसिद्ध कवि और दिग्गज पंडित दरबार में उपस्थित थे। पहरेदारों ने राजा भोज से निवेदन किया—"महा प्रभु! आपके दर्शन के लिये एक मौनव्रती ब्राह्मण आये हुये हैं।" राजा ने ब्राह्मण को अन्दर हाज़िर करने के लिये कहा। ब्राह्मण दरबार में आया, गठरी खोलकर उसने उन लकड़ियों के टुकड़ों को राजा के सामने रख दिया। जब उसने उनको देखा तो ब्राह्मण को काटो तो खून नहीं। सारा का सारा दरबार चकित होकर, ठहाका मारकर हँसा।

परन्तु राजा को बहुत गुस्सा आया। उसने पूछा—"इसका क्या मतलब है"!

जब सब के सब चुप थे, और दरबार में पूर्ण शान्ति थी, तब कालिदास ने खड़े होकर कहा—"प्रभू! इसमें एक गूढ़ अर्थ है। आज्ञा हो तो कहूं!"

"वह क्या है!"—राजा ने आश्चर्य से पूछा। कालिदास ने तब यों कहा—

दग्धं खाण्डवमर्जुनेन च वृथा
दिव्य द्रुमै र्भूषितं,
दग्धा वायुसुतेन हेमरचिता
लँकापुरी स्वर्गभूः,
दग्धस्सर्व सुखास्पदश्च मदनो
हा! हा!! वृथा शंभुना
दारिद्र्यं घनतापदं भुवि नृणां
केनापि नो दह्यते।

दिव्य वृक्षोंवाले खाण्डव बन को अर्जुन ने व्यर्थ जला दिया। स्वर्ग को भी मात करनेवाले लंका नगरी को हनुमान ने निष्कारण जला दिया। सब को सुख देने वाले कामदेव को शिव ने निर्ममता से जला दिया। परन्तु मनुष्यों को सतानेवाली दरिद्रता को कोई राजा दहन नहीं करता!—यह आपको यह ब्राह्मण बता रहा है।

यह सुन राजा बहुत सन्तुष्ट हुआ। उसने ब्राह्मण को बहुत ईनाम दिया।

ब्राह्मण ने सोचा था कि राजा उसको बहुत दण्ड देगा। पर उल्टा उसका स्वागत हुआ। उसे स्वयं अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ। वह पीछे पीछे देखता हुआ, दरबार से बाहर चला गया।

"वह ब्राह्मण क्यों पीछे देखते देखते जा रहा है!"—राजा ने कालिदास से पूछा।

"आपका जलाया हुआ दरिद्र देवता कहीं पीछे तो नहीं चला आ रहा है, यह देखने के लिये ब्राह्मण डर डरकर पीछे देख रहा है।

बातों बातों में....

एक बार एक आदमी गली में खरबूज़े बेच रहा था। एक निखट्टू बेकारमल सामने आया। वह खरबूज़ेवाले से ऊटपटांग प्रश्न पूछने लगा। खरबूज़ेवाले ने खिझकर कहा—"न खरीदना है, न लेना है, यूँ ही ख्वाहमख्वाह की चें चें!" बेकारमल को गुस्सा आ गया।

"लगता है, तू मुझे नहीं जानता है। भाव बताओ। खरबूज़ों का पूरा बोरा खा जाऊँगा।"—बेकारमल ने कहा।

"अगर तू अपने जैसे चार और भी ले आये, तब भी यह तेरे बस की बात नहीं है। जा जा, अपना रास्ता देख। अगर तू ये सब खरबूज़े खा गया तो मैं इतना बड़ा लड्डू दूँगा, जो दरवाज़े में से पार न हो सकेगा।"—खरबूज़ेवाले ने कहा।

"तू नहीं दे सकता। कहो तो दस रुपये शर्त"—बेकारमल ने कहा।

"यह तो तब देखा जायेगा, जब तू सारे खरबूज़े खा लेगा"—खरबूज़ेवाले ने कहा।

"अच्छा तो बोरा उतार"—कह निखट्टू बेकारमल ने एक एक खरबूज़े पर मुख मारा, और जूठा कर नीचे फेंकता गया।

"यह क्या मज़ाक़ है?"—खरबूज़ेवाले ने पूछा। "मज़ाक़ क्या है! मैंने तेरे सब खरबूज़े खा लिये हैं।"—बेकारमल ने जवाब दिया। "खाना क्या इसे ही कहते हैं!"—खरबूज़ेवाले ने पूछा। "उन्हें ज़रा किसी को बेचकर तो देख, सुन लेना खरीददार क्या कहेंगे"—बेकारमल ने कहा।

इस बीच में चारों ओर लोग इकट्ठे हो गये। उन सब ने कहा कि ये खाये हुये खरबूज़े थे। और वह कर ही क्या सकता था! अपना-सा मुँह लेकर वह बोरा उठाकर जाने लगा। मगर बेकारमल ने

श्रीमती डी. मंजुलता

रास्ता रोकते हुये कहा—"लड्डू के बारे में क्या कहते हो?"

"भला यह आदमी ऐसा लड्डू कहाँ से लायेगा, जो दरवाज़े में से न जाता हो। शर्त हारने पर एक रुपया दे देगा, मान जाओ।"—आसपास खड़े लोगों ने कहा। "नहीं, नहीं, मेरे साथ यह सब नहीं चलेगा। दस रुपये देने ही पड़ेंगे।"—बेकारमल ने ज़िद पकड़ी।

"अच्छा तो, मैं एक ऐसा लड्डू लाता हूँ, जो दरवाज़े में से न निकलता हो।" यह कह खरबूज़ेवाला पास की हलवाई की दुकान में जाकर दो पैसे का एक गुड़ का लड्डू खरीद लाया।

"क्या यही लड्डू है, जो दरवाज़े में से पार न हो सकेगा!"—बेकारमल ने हँसी उड़ाते हुये कहा।

"तब क्या समझ रखा है! जिस दरवाज़े को चाहे तू चुन ले, दरवाज़े में से निकलता है कि नहीं, दिखाये देता हूँ"—खरबूज़ेवाले ने कहा।

सब मिलकर पासवाले घर के दरवाज़े के पास गये। खरबूज़ेवाले ने लड्डू को दरवाज़े के पास रखकर कहा—"पार कर"। पर लड्डू न हिला। "देखा लड्डू दरवाज़ा से पार न हुआ।"—खरबूज़ेवाले ने कहा। यह सुन बेकारमल भौंचक्का हो इधर उधर ताकने लगे।

चारों ओर खड़े हुये लोग कहने लगे—"यह आदमी ठीक ही तो कह रहा है।"

"अच्छा तो ठीक है"—कोसता हुआ बेकारमल खिसकने लगा। खरबूज़ेवाले ने उसे रोककर कहा—"शर्त हार गये हो। दस रुपया यहाँ रखकर जाना।"

बेकारमल से बात न बनी। उसने दस रुपये दे दिये।

"खरबूज़े गये तो गये। आज सुबह किसी अच्छे आदमी का मुख देखा था। दस रुपये तो मिले"। यह सोचता सोचता खरबूज़ेवाला घर चला गया!

लोभी स्वामी

पुराने ज़माने में एक देश में एक रईस रहा करता था। वह बहुत लालची था। विवाह करने से, कहीं ऐसा न हो कि बच्चे पैदा हों, और उसकी धन-सम्पत्ति का बँटवारा कर लें, उसने ब्रह्मचारी बने रहने की ठानी। खाना बनाने के लिये उसने सिर्फ़ एक रसोइया रख रखा था। वह न स्वयं पेट भर खाता, न नौकर को ही खाने देता।

होली का त्योहार आया। नौकर ने बिना मालिक के जाने ही तरह तरह के पकवान बनाकर रखे। भोजन के लिये बैठते वक्त जब मालिक ने पकवान देखे तो उसके दिल की धड़कन बन्द-सी हो गई—"अरे! क्यों इतने पकवान बनाये हैं?"

"आज होली जो है मालिक! कम से कम साल में एक दिन तो पेट भर कर खा लें"—नौकर ने कहा।

"ठीक है, ठीक है।"—कहते हुये मालिक ने तीन चौथाई जबरदस्ती खा लिया। उसे डर था, अगर उसने पकवान स्वयं न खाये तो नौकर खा लेगा।

ठूँस ठूँसकर खाने पर भी जलेबी रह गई और मालिक की यह हालत थी कि पेट में हवा के लिये भी जगह न थी। पर वह चाहता था कि नौकर जलेबी को न खा ले, इसलिये उसने कहा—"कम से कम रात भर इसे चाशनी में रखो, तभी इसमें मिठास चढ़ेगी।"

"अच्छा हुज़ूर! रात को ही खा लेना।"—नौकर ने कहा।

परन्तु मालिक ने सवेरे ही इतना खा लिया था कि शाम को उसे भूख न लगी। इसलिये उसने नौकर से कहा—"अरे अब भी जलेबी को न छूओ। आज तो होली है

कुमारी सरोजा भटनागर

न! आज रात को हम में से जिस किसी को अच्छा सपना आये, वही जलेबी को खाये। क्यों, क्या कहते हो?"

"ऐसा ही सही!"—नौकर ने कहा।

मालिक यह सोचकर सो गया कि जलेबी नौकर के हाथ न लगेगी, और सवेरे तक तो उसे भूख लग ही जायेगी। जब नौकर ने मालिक को खुर्राटे मारते सुना तो वह रसोई घर में गया। जलेबी वह खा गया।

अगले दिन जब मालिक उठा तो उसको रोज़ की तरह भूख लगी। उसने नौकर को बुलाकर पूछा—"क्यों, क्या सपना आया था?"

"क्यों पूछते हैं? बहुत ही भयानक सपना देखा"—नौकर ने कहा।

मालिक खुश होकर कहने लगा—"मालूम है, मुझे कितना बढ़िया सपना आया है? राजा ने मेरा अपनी लड़की से विवाह कर, मेरा पट्टाभिषेक कराया। बगल में दासियाँ चामर चला रही थीं। दरबार भरा हुआ था। सामने नाचनेवाली नाच रही थीं। क्या वैभव! मगर तुमने यह न बताया कि तुम्हें क्या सपना आया था?"

नौकर ने नीचे मुख कर कहा—"हुज़ूर! आँखें बन्द की थीं कि नहीं,

काली देवी सामने आकर शेर की तरह गरजने लगीं—"अरे जाकर रसोई घर में जलेबी खाता है या मैं तेरा गला घोटूँ"—

मैं पसीने पसीने हो गया—"माँ, जलेबी मुझे नहीं खानी चाहिये। मैंने और मेरे मालिक ने एक समझौता कर रखा है। जिस किसी को अच्छा सपना आये, वह ही सवेरे जलेबी खा सकेगा। इसलिये जबरदस्ती न करो। मुझे छोड़ दो।"—मैंने काली देवी से बार बार प्रार्थना की।

परन्तु काली माई ने मेरा पीछा न छोड़ा। "झट जाकर रसोई घर में जलेबी खाता है कि नहीं! या मैं तुझे तोड़ मरोड़ कर खाऊँ!" कहती कहती मुझ पर कूदीं। जान पर आफत आ गई थी, इसलिये रसोई घर में जाकर मुझे जलेबी खानी ही पड़ी!"—नौकर ने कहा।

मालिक को गुस्सा आया।—"अगर काली माई ने इतना शोर मचाया था, तो मुझे कुछ न कुछ तो सुनाई देना चाहिये था। मुझे कुछ भी नहीं सुनाई दिया। मगर तू एक आवाज़ देता तो मैं तेरी मदद के लिये आ जाता। बुलाया जो होता! पास ही तो सो रहा था! बेवकूफ़!"—मालिक ने डाँटा।

नौकर ने हँसते हुये कहा—"यह क्या मुझे नहीं मालूम था! मैंने आप के लिये देखा। परन्तु आप तो कहीं किसी दूसरी दुनियाँ में, मन्त्रियों के बीच, रानी के बगल में, नाच-गाने देखते हुये सिंहासन पर बैठे हुये थे। मुझे क्या राज-सैनिक अन्दर घुसने देते!"

नौकर की बात सुनकर मालिक शर्मिन्दा हो गया। तब से मालिक नौकर को भी पेट भर कर खाना देने लगा।

[१७]

[व्याघ्रदत्त को जब यह मालूम हुआ कि समरसेन कहाँ छुपा हुआ है, उसने अपने सैनिकों को उससे भिड़ा दिया था न ? व्याघ्रदत्त के सैनिकों ने समरसेन के बहुत सारे सैनिकों को मार भी दिया था। समरसेन व्याघ्रदत्त के हाथों कैदी हो गया था। शिवदत्त पीछे से व्याघ्रदत्त का मुकाबला करने आ रहा था। समरसेन और व्याघ्रदत्त ने भागना शुरू कर दिया था। बाद में—]

जब समरसेन को यह मालूम हुआ कि शिवदत्त अपने अनुयायियों के साथ उस ध्वंसावशेष नगर में आ पहुँचा था, तो उसका हौसला बढ़ गया। अगर वह थोड़ी देर पहिले आता तो उसको व्याघ्रदत्त के बन्दी होने की नौबत न आती। व्याघ्रदत्त और उसके सैनिकों को मारकर वह स्वयं शाक्तेय का त्रिशूल पा सकता था।

परन्तु अब वह व्याघ्रदत्त के हाथ कैदी हो चुका था। सिवाय इसके कि वह चतुर्नेत्र का मित्र था, व्याघ्रदत्त को उसको मार देने में कोई आनाकानी न थी। समरसेन ने सोचा कि क्या ही अच्छा होगा, अगर इस आपत्ति में चतुर्नेत्र उसकी मदद के लिये आ पहुँचे।

इधर व्याघ्रदत्त भी सोचने लगा था कि उसकी परिस्थिति विषम होती जा रही है। उसको एक तो यह सन्देह था—क्या शिवदत्त को यह मालूम है कि शाक्तेय का त्रिशूल कहाँ है? दूसरा यह कि समरसेन का

चतुर्नेत्र मित्र है कि नहीं ! उसके कहने में कितनी सचाई है !

कुछ भी हो, व्याघ्रदत्त ने फ़िलहाल समरसेन को न मारने की ठानी। वह तो यह सोच रहा था कि समरसेन के साथ मैत्री का ढोंग कर क्यों न अधिक ताक़तवर शिवदत्त को जैसे-तैसे नीचा दिखाया जाय !

सब के सब पहाड़ों के उतार-चढ़ाव पार करते करते भागे आ रहे थे। अपने सैनिकों की आवाज़ सुनकर, व्याघ्रदत्त ने अनुमान किया कि वे अब भी शिवदत्त के सैनिकों के साथ लड़ रहे थे, इसलिये वह मन ही मन खुश हो रहा था। उसका हौसला भी बढ़ गया था।

"समरसेन! आओ, हम यहाँ थोड़ा आराम करें। दुश्मनों से हम अब बहुत दूर आ गये हैं। अब कोई डर नहीं है।"—व्याघ्रदत्त ने कहा।

समरसेन को यह बात सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ। क्योंकि वह बन्दी होते हुये उसको मित्र समझ रहा था और उसके मित्र शिवदत्त को शत्रु समझ रहा था।

"शिवदत्त पहिले से ही मेरा दोस्त है। उससे डर तुम्हें लगना चाहिये न कि मुझे।"—समरसेन ने कहा।

दौड़धूप से थका हुआ व्याघ्रदत्त पेड़ के सहारे बैठने ही जा रहा था कि समरसेन की बात सुनकर वह हैरान खड़ा रह गया। वह तुरंत जवाब न दे पाया। उसने सोचा, चाहे कुछ भी हो, समरसेन को अपनी तरफ़ कर लेने में ही उसका फ़ायदा है।

"समरसेन! ऐसा लगता है, तुम्हें शिवदत्त के बारे में अधिक नहीं मालूम है। ख़ैर, वह तो जाने दो। अगर हम आपस में दुश्मन बने रहें तो दोनों का नुकसान होगा। देखो, मैं अभी तुम्हें छुड़वाये देता

हूँ। बाद में हम सब बातों के बारे में बातचीत कर लेंगे।"

व्याघ्रदत्त के आज्ञा देते ही दोनों सैनिकों ने समरसेन के हाथों पर बँधी हुई रस्सियों को खोल दिया। समरसेन ने भी सोचा कि जब तक वह आफ़त में फँसा हुआ है, व्याघ्रदत्त के साथ मेल-जोल रखने में ही उसका भला है।

"शाक्तेय के अपूर्व शक्तिवाले त्रिशूल के बारे में सिर्फ़ हम दोनों ही जानते हैं। वह कहाँ है और उसके पाने पर हम कितने शक्तिशाली और ऐश्वर्यशाली हो सकते हैं, वह भी हम दोनों जानते हैं। परन्तु ठीक इस समय तुम उससे क्या फ़ायदा उठाना चाहते हो, क्या तुम बता सकते हो?"— समरसेन ने पूछा।

व्याघ्रदत्त उस प्रश्न को सुनते ही कुछ मचल-सा उठा। उसे एक क्षण यह सन्देह हुआ कि धन-राशि से भरी नाव के बारे में क्या समरसेन को नहीं मालूम है? परन्तु दूसरे ही क्षण उसके सन्देह का निवारण हो गया। उसने सोचा कि उस नाव में रखे धन को लेने के लिये ही तो वह ज़मीन आसमान एक कर रहा था। इसलिये उसने

सोचा, जो कुछ वह कहने जा रहा था, उससे उसका कोई नुकसान न होगा।

"हम दोनों को समुद्र में डूबे हुये, धन-राशि से भरी नाव के बारे में मालूम ही है। उस विषय में हम दोनों को एक दूसरे को धोखा देने में कोई फ़ायदा नहीं। परन्तु मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूं। जरा सोचकर जवाब देना। उस धन-राशि को आधा आधा आपस में बांट लेना, क्या तुम्हें मंजूर है!"—व्याघ्रदत्त ने पूछा।

"मंजूरी और नामंजूरी की बात तो अलग रखो, पहिले उस मान्त्रिक के बारे में क्या कहते हो!"—समरसेन ने हँसते हुये पूछा।

"अगर एक बार हमारे हाथ में शाक्तेय का त्रिशूल आ गया तो इस दुनियाँ में हमारा कोई बाल बाँका न कर सकेगा। यह तो तुम जानते हो न!"—व्याघ्रदत्त ने कहा।

यह जवाब सुन समरसेन और ज़ोर से हँसा। व्याघ्रदत्त को न मालूम हो सका कि वह क्यों हँस रहा है। वह आश्चर्य से उसकी तरफ़ ताकने लगा।

"यह भी हो सकता है कि शाक्तेय का त्रिशूल हम से पहिले शिवदत्त के हाथ लग गया हो। क्या यह बात तुम्हें समझ में आई!"—समरसेन ने पूछा।

"शिवदत्त को यह ठीक तरह नहीं मालूम कि किस निश्चित जगह पर त्रिशूल रखा हुआ है। फिर मेरे सैनिकों को मारने से पहिले वह कुछ कर भी नहीं सकता है। वह चित्र, जिसमें यह बताया गया है कि त्रिशूल कहाँ रखा हुआ है, मेरे पास है।

"हाथियों के वन में विष वृक्ष" मालूम होने मात्र से, चित्र में दिये संकेतों की सहायता के बिना, कोई भी नहीं जान

सकता कि त्रिशूल कहाँ है।"— व्याघ्रदत्त ने कहा।

व्याघ्रदत्त अभी अपनी बात खतम भी न कर पाया था कि वह सारा प्रदेश एक विचित्र ध्वनि से गूँजने लगा। मान्त्रिक एकाक्षी के कपाल का शब्द सुनाई पड़ रहा था। यह शब्द सुनते ही समरसेन उठ खड़ा हुआ। व्याघ्रदत्त और उसके सैनिक घबरा उठे। भय से इधर उधर देखने लगे।

"यह चतुर्नेत्र का कंकाल है! तुम तुरंत भाग जाओ, और दूर कहीं किसी गुफा में छुप जाओ। उसी में तुम्हारा भला है।"—समरसेन ने कहा।

व्याघ्रदत्त ने सन्देह से उसकी तरफ़ देखते हुये पूछा—"तुम तो कहते थे कि चतुर्नेत्र तुम्हारा मित्र है! फिर भला हमें उससे क्यों डरना चाहिये?

समरसेन ने सोचा कि अगर कुछ देरी हुई तो उसी पर आफ़त आ पड़ेगी। कंकाल तो एकाक्षी मांत्रिक का ही अनुचर था। कहीं व्याघ्रदत्त को यह न मालूम हो जाय कि मांत्रिक चतुर्नेत्र का, इतना शक्तिशाली कोई शत्रु है, इसलिये ही समरसेन झूठ बोला था।

"चतुर्नेत्र को पहिले तुम्हारा दीख जाना अच्छा नहीं है। मैं पहिले उससे बातचीत करूँगा, फिर तुम्हारा परिचय करा दूँगा। मैं तुम्हारे भले के लिये ही कह रहा हूँ। अच्छा है, तुम किसी गुफा में तुरत छुप जाओ।"—समरसेन ने कहा।

समरसेन के यह कहते कहते—"कपाल!! काल भुजंग!!" एकाक्षी की भयंकर आवाज़ सुनाई दी। उस भयंकर ध्वनि को सुनकर व्याघ्रदत्त और उसके सैनिक डर के मारे भागने लगे। यही मौका देख, समरसेन भी एक तरफ़ भागने लगा।
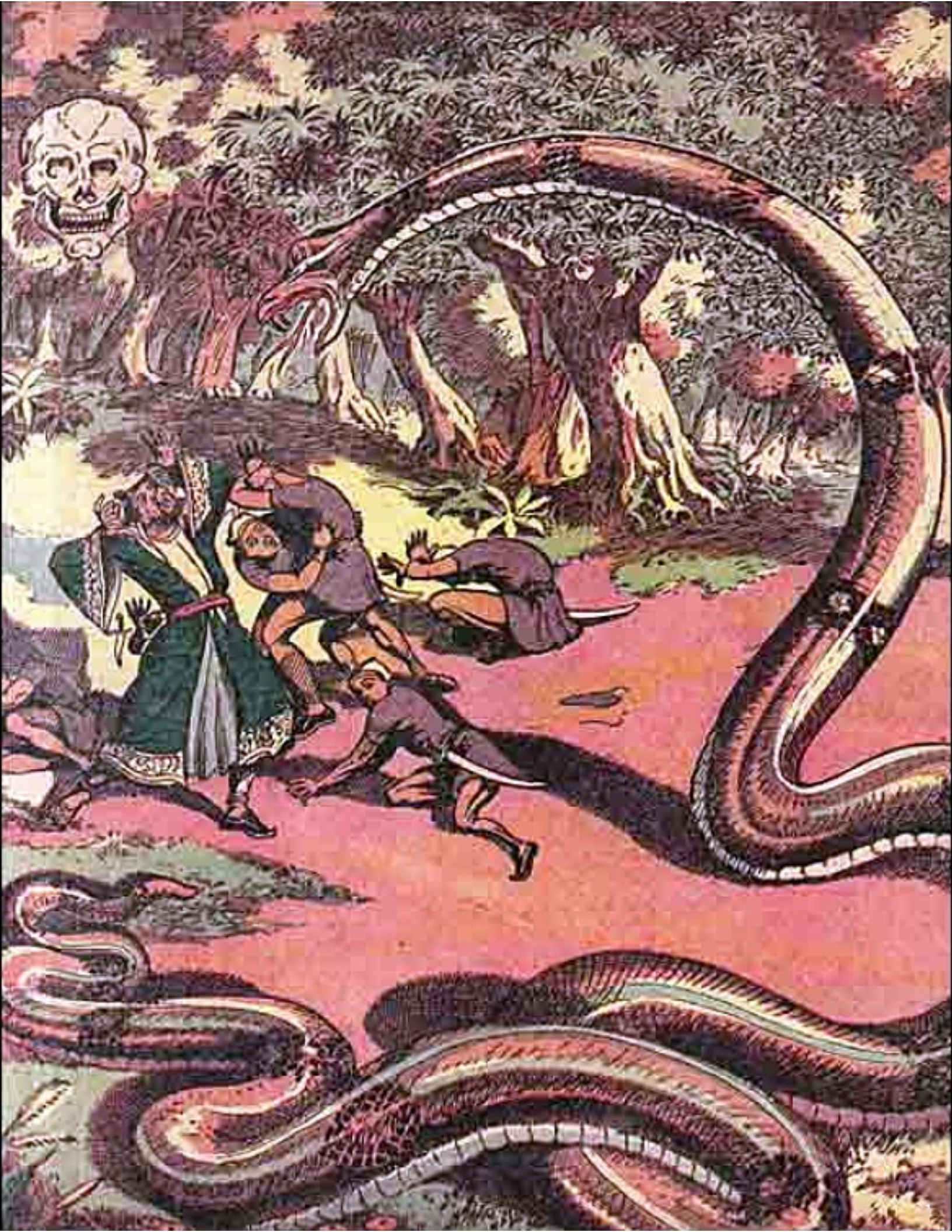
जब थोड़ी दूर दौड़ने के बाद समरसेन ने मुड़कर देखा तो उसे लगा कि समरसेन भी दूसरी तरफ़ दौड़ा आ रहा था। वह सोचने लगा कि उस चतुर्नेत्र को देखकर, जिसे वह अपना मित्र बता रहा था, वह क्यों भागा जा रहा है! ज़रूर दाल में कुछ काला है।

इतने में मांत्रिक एकाक्षी वहाँ आ ही पहुँचा। उसकी नजर व्याघ्रदत्त पर पड़ी। वह भयंकर स्वर में गरजा—"कपाल, काल भुजंग। चतुर्नेत्र के इस अनुचर को चारों तरफ़ से घेर लो।"

व्याघ्रदत्त को आखिर सब कुछ मालूम हो गया। वह मांत्रिक समरसेन का मित्र चतुर्नेत्र नहीं था। उसकी आँखों में धूल झोंककर समरसेन भाग गया था। अब क्या किया जाय? जैसे तैसे अब इस मांत्रिक को बताना है कि वह चतुर्नेत्र का मित्र नहीं है, बल्कि उसका शत्रु है।

एकाक्षी का हुक्म पाते ही काल भुजंग और कपाल ने व्याघ्रदत्त और उसके सैनिकों को चारों तरफ़ से घेर लिया। काल भुजंग, फण उठाकर, फुँकारता उनके चारों तरफ़ घूमने लगा। कपाल उनके सिरों के ऊपर विचित्र स्वर में चिंघाड़ने लगा।

एकाक्षी अट्टहास करता हुआ उनके पास आया। इस बीच में उसका अट्टहास भी समाप्त हो गया; क्योंकि वह जल्दी ही जान गया कि वे समरसेन व उसके सैनिक न थे।

"तुम कौन हो?—कुम्भाण्ड के अनुचर हो?"—एकाक्षी ने पूछा। व्याघ्रदत्त हका-बका हो खड़ा रहा। क्योंकि कुम्भाण्ड कौन था, वह नहीं जानता था।

"मेरा नाम व्याघ्रदत्त है। मैं इस व्याघ्र प्रदेश का राजा हूँ। आप जिस कुम्भाण्ड के बारे में कह रहे हैं, मैं उसको बिल्कुल

नहीं जानता हूँ।"—व्याघ्रदत्त ने काँपते काँपते कहा।

"तो यानी—तुम मृत्युघाटी के उस तरफ़ से आये हुये आदमी नहीं हो?"—एकाक्षी ने सन्देह की दृष्टि से देखते हुये पूछा।

"आप जिस मृत्युघाटी के बारे में कह रहे हैं, वह कहाँ है, इतना भी मैं नहीं जानता हूँ। हो सकता है कि हम उस घाटी को किसी और नाम से जानते हों।"—व्याघ्रदत्त ने कहा।

"तो क्या फिर तुम समरसेन नामवाले किसी व्यक्ति को जानते हो?"—एकाक्षी ने पूछा।

एकाक्षी के यह प्रश्न पूछते ही व्याघ्रदत्त को सारी की सारी बात मालूम हो गई। अब वह जान गया कि एकाक्षी मांत्रिक समरसेन का पक्का विरोधी था। वह सोचने लगा कि उसको अच्छा मौका मिला है।

"मांत्रिक महाशय! वह समरसेन अभी अभी—दो तीन घड़ी पहिले, मेरे चंगुल से निकलकर भाग गया है। वह मेरा जानी दुश्मन है। उसे मैंने कैद भी कर लिया था।"—व्याघ्रदत्त ने कहा।

व्याघ्रदत्त के यह कहने पर एकाक्षी को भी पता लग गया कि मामला क्या था। उसने सोचा कि समरसेन को ढूँढ निकालने में व्याघ्रदत्त उसकी मदद कर सकेगा, परन्तु उसने सोचा कि पहिले यह जाना जाय कि आखिर यह समरसेन का परम शत्रु क्यों है।"

"तुम दोनों एक दूसरे के शत्रु क्यों हो गये?"—एकाक्षी ने पूछा।

"आप तो सर्वज्ञ हैं। मैं क्या कहूँ?"—कहते कहते व्याघ्रदत्त ने सिर नीचे झुका लिया। (अगले अंक में पूर्ण होगी।)

विचित्र विवाह

किसी ज़माने में, पाटलीपुर में एक अमीर ब्राह्मण रहा करता था। उसके केशव नाम का एक लड़का था। वह बहुत ही खूबसूरत था। गुणवान भी था। उम्र आने पर उसको विवाह की इच्छा हुई। परन्तु उसको कहीं भी कोई सुन्दर, उसके लायक युवती न दिखाई दी। इसलिये वह तीर्थ-यात्रा के बहाने, लड़की ढूंढ़ने के लिये घर से माँ-बाप की आज्ञा लेकर निकल पड़ा।

केशव बहुत दिनों बाद नर्मदा नदी के किनारे पहुँचा। उसी समय वहाँ एक बरात भी आई हुई थी। उस बरात में से, एक ब्राह्मण ने केशव का सौन्दर्य देखकर, उसके पास आकर बड़ी दीनता से कहा—"बेटा! मैं बूढ़ा हूँ। मेरी एक मदद कर दो।"

"कहिये, जो मुझ से हो सकेगा ज़रूर करूँगा।"—केशव ने कहा।

"मेरी मदद कर देने से तुम्हारा कोई नुकसान न होगा। परन्तु मेरा वंश तुम्हारी कृपा से हमेशा चलता रहेगा।"—बूढ़े ब्राह्मण ने कहा।

"कहिये, क्या करूँ!"—केशव ने पूछा।

"नर्मदा के पार रत्नदत्त नाम का ब्राह्मण रहता है। उसके रूपवती नाम की लड़की है, जो बहुत ही सुन्दर और गुणवती है। मैं अपने लड़के की उससे शादी कराने के लिये वहाँ जा रहा हूँ। मेरे लड़के को उन्होंने अभी तक देखा नहीं है। तुम जितने खूबसूरत हो, उतना ही वह बदशकल है। उसको देखने पर रत्नदत्त अपनी लड़की न देगा। इसलिये अगर तुम मेरे साथ आये तो मैं कह दूँगा कि तुम ही

श्री कैलासचन्द नारंग

मेरे लड़के हो। तुम्हें दूल्हा बना दूँगा। तुम ही विवाह में फेरे लगाना। विवाह के बाद तुम अपने रास्ते चले जाना और मैं अपने रास्ते बहू को ले जाऊँगा। मगर तुम्हारा ऋण न रखूँगा "—ब्राह्मण ने कहा।

ब्राह्मण की नीचता देख वह हक्काबक्का रह गया। परन्तु चूँकि वह वचन दे चुका था, इसलिये जो ब्राह्मण ने कहा था, उसे करना पड़ा। वह भी बरात के साथ, नाव में नदी पारकर, उस दिन शाम ही लड़की के गाँव में पहुँच गया।

जब केशव नित्य-कृत्य से निवृत्त होने के लिये नदी के किनारे गया, तो उसे एक राक्षस ने पकड़कर खा लेना चाहा। केशव ने कहा कि उसने एक ब्राह्मण की सहायता करने का वचन दे रखा है, काम होने पर अगले दिन शाम को वह आ जायेगा, और तब खा लेना।

"वचन देकर भूल तो नहीं जाओगे?"—राक्षस ने सन्देह करते हुये पूछा।

"वचन देकर मुकरता नहीं हूँ, इसी वजह से धूर्त, नीच ब्राह्मण की मदद कर रहा हूँ।"—केशव ने कहा।

"अच्छा, तो जाओ। देखता हूँ, तुम कितने ईमानदार हो।"—राक्षस ने कहा।

केशव को दूल्हा बनाया गया। विवाह भी यथा विधि हो गया। उसी दिन दूल्हे और दुल्हिन को शयनागार में भेजा गया। परन्तु केशव ने न रूपवती की ओर देखा, न उससे बातचीत ही की। अपने पति को खूबसूरत पा रूपवती बहुत सन्तुष्ट हुई; पर उसको बात न करता देख उसने सोचा, शायद वह रूठा हुआ है। पर जब उसे कुछ न सूझा तो उसने आँख मूँद कर सोने का बहाना किया।

रात के समय, केशव रूपवती को गाढ़-निद्रा में देख, धीमे धीमे कमरे से बाहर निकल, राक्षस के पास नदी किनारे चल दिया। यह सब रूपवती तो देख ही रही थी। वह भी ओढ़नी ओढ़कर केशव से थोड़ी दूर हटकर उसके पीछे पीछे चलने लगी।

केशव के नदी के किनारे पर पहुँचने पर, राक्षस ने सामने आकर कहा—

"वाह, नौजवान, शाबाश। तुमने अपना वचन निभाया है। इतने ईमानदार आदमी को खाकर मैं भी पवित्र हो जाऊँगा।"

यह देख रूपवती ने बीच में आकर झुँझलाते हुये कहा—"अरे, अरे, वे तो मेरे पति हैं। छोड़ दो उन्हें।"

"मुझे भूख लग रही है। मैं इसको खा लूँगा। मैं क्या करूँ!"—राक्षस ने पूछा।

"अगर तुम्हें भूख लग रही है तो मुझे खा लो। उनको छोड़ दो। उनको खाकर अगर तुमने मुझे विधवा बना दिया तो मेरी क्या गति होगी?"—रूपवती ने पूछा।

"भीख माँगकर जीना।"—राक्षस ने जवाब दिया।
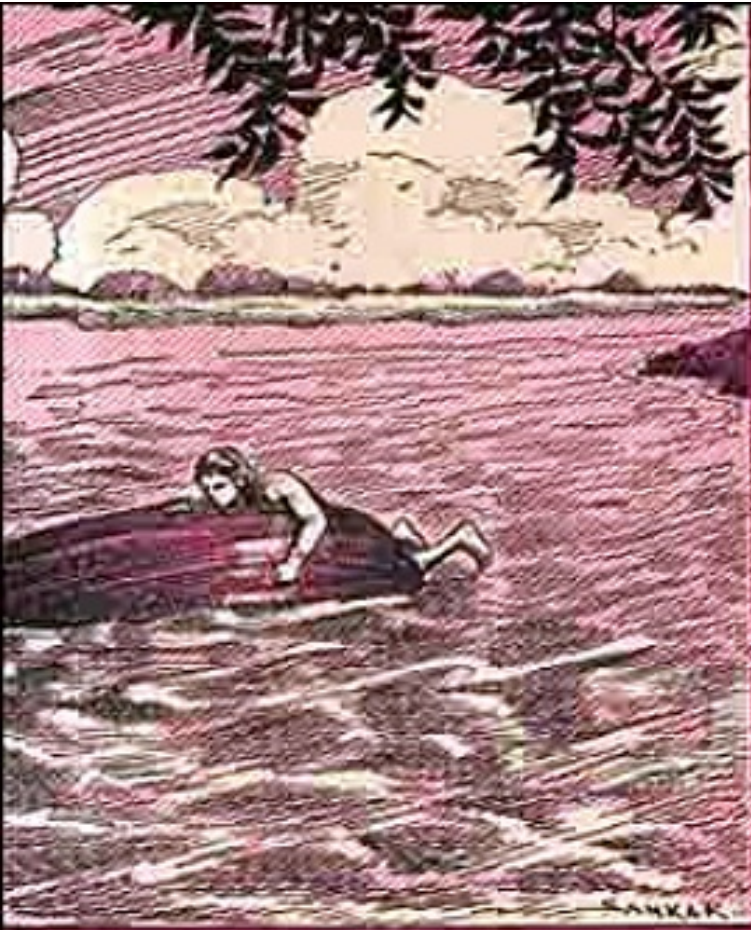
"यदि मैं अनाथ हो गई तो मुझे कौन भिक्षा देगा?"—रूपवती ने पूछा।

"तुम्हें भीख न देनेवाले लोग मर जायेंगे। अब तो ठीक है न? जाओ, हटो!"—राक्षस ने कहा।

"ऐसी बात है तो मैं तुम से भीख माँगती हूँ। मुझे पति-भिक्षा दो।"—रूपवती ने माँगा।

यह देख राक्षस को बहुत आनन्द हुआ। "यह लो तुम्हारा पति! ले जाओ। तुम उसके लायक पत्नी हो। तुम दोनों हमेशा सुखी रहो!"—राक्षस ने उनको आशीर्वाद दिया, और अन्धेरे में कहीं चला गया।

रूपवती की पति-भक्ति देख केशव को अत्यधिक प्रसन्नता हुई। पर तो भी उसने उससे सच बात न कही। सवेरे होने से पहिले वे घर वापिस पहुँच गये।

अगले दिन, जल्दी ही भोजन कर, दुल्हेवाले, दुल्हिन के साथ, घर से निकले। कृतघ्न ब्राह्मण ने सोचा, काम हो गया है, अब भला इसको साथ रखने से क्या फ़ायदा? इसलिये उसने अपने गहने और वस्त्र केशव के पास से छीन लिये। यही नहीं, उसने अपने सम्बन्धियों को एक नाव में चढ़ाया, और केशव को अकेला, दूसरी नाव पर। उसने दो मल्लाहों को, खूब धन देकर, नाव को मंझधार में डुबो देने को कहा। पहिली नाव तो ठीक नदी के पार पहुँच गई। परन्तु दूसरी नाव, जिसमें केशव था, नदी में डूब गई। मल्लाह तैरकर नदी पार गये।

क्योंकि पानी तेज़ था, केशव की नाव डूबकर भी, बहुत दूर बहती गई। केशव जैसे तैसे, जान बचाकर उस नाव में से बाहर निकला और किनारे पर पहुँचा। उसे कृतघ्न ब्राह्मण के धोखे की अपेक्षा रूपवती का वियोग अधिक सता रहा था।

और इधर, जब रूपवती ने नाव से उतरकर, पैदल जाते हुये, बूढ़े ब्राह्मण से पूछा—"और सब तो चल रहे हैं, परन्तु "वे" कहीं नहीं दिखाई देते।"

"तेरा पति ही न! वह यह ठहरा!"—कहते हुये बूढ़े ब्राह्मण ने अपने बदशक्ल बेटे को दिखाया।

रूपवती को बहुत गुस्सा आया। वह बहुत दुःखित भी हुई।

"मेरे पति ये हैं! आइये राजा के पास, वे ही फ़ैसला कर देंगे।"—रूपवतीने कहा।

बूढ़ा डरने लगा। अगर दुल्हिन ने राजा के पास जाकर शिकायत की तो उसका सिर धड़ से अलग कर दिया जायेगा। इसलिये उसने तुरंत लड़की को मायके भेज दिया और वह अपने रास्ते पर चला गया।

रूपवती मायके चली तो गई, पर उसे कोई खुशी नहीं हुई। वह अपने पति के लिये दिन-रात फ़िक्र करने लगी। उसे यह डर भी सता रहा था कि वे जिन्दे हैं कि नहीं। वह सोचने लगी, कहीं उस ब्राह्मण ने उनका नुक्सान तो नहीं पहुँचाया।

इस बीच में, नदी से बाहर आ, केशव रत्नदत्त के पास जाकर रूपवती से किये गये अन्याय के बारे में कह पश्चात्ताप करना चाहता था। इसलिये वह पैदल रूपवती के घर पहुँच गया।

वहाँ केशव को रूपवती दिखाई पड़ी। देखते ही उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। केशव को देखकर रूपवती की प्रसन्नता का कहना ही क्या! केशव की उस घर में वही आवभगत हुई, जो एक दामाद की होती है।

कुछ दिन तक तो केशव ससुराल में रहा। फिर रूपवती को लेकर वह पाटलीपुर चला गया। वहाँ वे बहुत समय तक सुखपूर्वक जीवित रहे।

अक्लमन्द मन्त्री
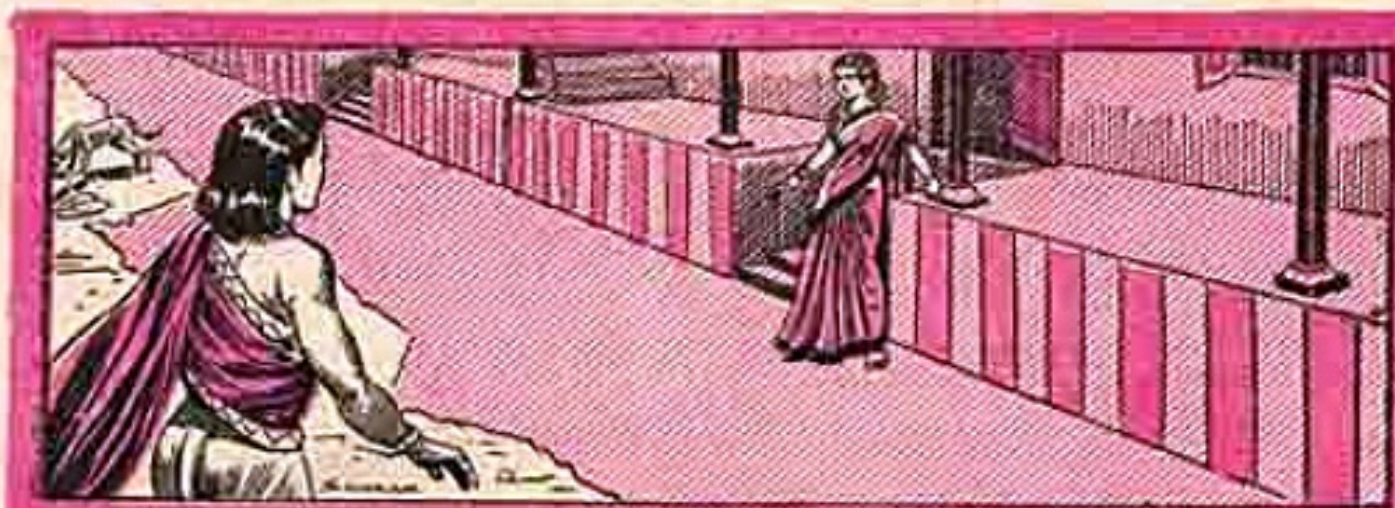
अरब देश में एक सुल्तान रहा करता था। उसे शासन-कार्य में दिलचस्पी न थी, और वह भोग-विलास में मस्त रहता। नतीजा यह हुआ कि राज्य की बुरी हालत हो गई।

सुल्तान के कई मन्त्री थे। उनमें से कई सुल्तान की तरह ऐशो-आराम में मशगूल रहते। बाकी को राज्य की बिगड़ती हालत पर अफ़सोस तो होता, पर सुल्तान के गुस्से के डर से, वे उससे कुछ भी न कहते।

आखिर, एक मन्त्री ने सुल्तान को यह बता देने का एक उपाय सोचा। वह एक दिन शाम को सुल्तान के साथ टहलने के लिये गया। जब वे लौट रहे थे, तो अन्धेरा हो चुका था। उन्हें उल्लुओं का चिल्लाना सुनाई दिया। चिल्लाना कान में पड़ते ही, मन्त्री रुककर गौर से सुनने लगा।

"क्या सुन रहे हो?"—सुल्तान ने अचम्भे में मन्त्री से पूछा।

"हुजूर! दो उल्लू आपस में बात कर रहे हैं। मैं उनकी बातचीत सुन रहा हूँ।—" मन्त्री ने जवाब दिया।

"क्या तुम उल्लुओं की भाषा समझते हो?"—सुल्तान ने पूछा।

"जी हुजूर!" मन्त्री थोड़ी देर तक सुनता रहा, फिर उसने कहा—"हुजूर, अब इनकी बात मैं न सुन पाऊँगा। मुझे ऐसा लग रहा है, जैसे कोई मेरे कानों में गरम सीसा डाल रहा हो। चलिये, चलें, हुजूर"

"वे क्या बातें कर रहे हैं?"—सुल्तान ने पूछा।

"क्या पूछते हैं, हुजूर! बेअक्ल पक्षी हैं, उनकी बातों पर गौर फरमाना अच्छा नहीं है।"

श्री. सैयद असद अली

"उनकी बेहूदी बातें ज़रा मुझे भी तो जान लेने दो!"—सुल्तान ने कहा।

"ऐसी झूठी बातें, जो मैं ही न सुन सका, क्या आप सुन सकेंगे?"—मन्त्री ने पूछा।

"अगर ऐसी बात हो तो हम उल्लुओं को सज़ा देंगे। वे क्या कह रहे हैं, जल्दी बताओ।"—सुल्तान ने हुकम दिया।

"अच्छा, तो सुनिये। उल्लू दहेज़ के बारें में भावताव कर रहे हैं। दूल्हे उल्लू की माँ, दुल्हिन की माँ से पचास खंडहर माँग रही है। दुल्हिन की माँ कह रही है—"पचास की क्या बात है! चाहो तो पाँच सौ उजड़े हुये गाँव दूँगी। दूल्हे की माँ ने पूछा कि इतने सारे गाँव कहाँ हैं? दुल्हिन की माँ ने जवाब दिया—सुल्तान के राज्य में उजड़े हुये गावों की कमी नहीं है।"—मन्त्री ने कहा।

सुल्तान के मुँह पर ताला लग गया। सुल्तान जान गया कि राज्य की हालत बहुत बिगड़ गयी है, यह बताने के लिये ही मन्त्री ने यह चाल चली थी।

थोड़ी दूर जाने के बाद, मन्त्री ने पूछा—"हुज़र! क्या हुकम है कि इस तरह अफ़वाह उड़ानेवालों को सज़ा दी जाय?"

"सही बात कहने के लिये भला सज़ा क्यों दी जाय? मैं तुम्हें प्रधान मन्त्री नियुक्त करता हूँ। यह देखो कि दूल्हे की माँ को—उस उल्लू को, हमारे राज्य में कोई दहेज़ न मिले।"—सुल्तान ने कहा।

अगले दिन से सुल्तान में बहुत परिवर्तन आ गया। उसने विनोद-विलास छोड़ दिये, और राज्य-कार्य में दिलचस्पी लेने लगा। कृषि, व्यापार, आदि की वृद्धि के लिये, उसने अनुकूल वातावरण बनाने का प्रयत्न किया। देखते देखते राज्य फिर से सुधर गया।

बँटवारा

उज्जयिनी के पास एक चौधरी रहा करता था। वह चौधरी आसपास के नौ गाँवों का पंचायतदार और मुखिया था। काफ़ी पैसेवाला भी था। उसके चार लड़के थे। उनमें से बड़ा मुखिया था। दूसरा गौ-बैलों को देखता, और तीसरा खेती का काम करता। चौथे लड़के को पढ़ने-पढ़ाने, धर्म आदि कार्यों में अधिक अभिरुचि थी।

थोड़े दिनों बाद चौधरी बूढ़ा हो गया। उसने खटिया पकड़ी। अपने लड़कों को पास बुलाकर उसने कहा—"अब तक हमने दूसरों के झगड़ों का फ़ैसला किया है; पर हम अपने झगड़ों को फ़ैसले के लिये किसी के पास नहीं ले गये। मेरे दिन नज़दीक आ गये हैं। तुम मेरी खटिया के पायों के पास जहाँ चाहो, खड़े हो जाओ। जब मैं गुज़र जाऊँ, तो जो जो जिस पाये के पास खड़ा है, वह वहाँ वहाँ खोदें। परन्तु तुम आपस में कोई झगड़ा न करना।"

चारों लड़के चार पायों के पास खड़े हो गये।

"मैं क्या तुम्हारे लिये कुछ और कर सकता हूँ!"—पिता ने पूछा। लड़कों ने कुछ भी न कहा। "नारायण नारायण" कहता बूढ़ा चौधरी आराम से मर गया।

पिता की अन्त्येष्टि-संस्कार के बाद चारों भाई चार रंभे लेकर पिता के कहने के अनुसार, अपने अपने पाये के पास खोदने लगे। जहाँ बड़े भाई ने खोदा था, वहाँ सिर्फ़ भुस था। दूसरे भाई की जगह में केवल गोबर निकला। तीसरे भाई के खोदे हुये गढ़े में सिवाय मिट्टी के कुछ न निकला। परन्तु चौथे भाई के खोदने पर

श्री जानकीनाथ केडिया

सोना-चाँदी मिला। यह देख बाकी तीन गुस्से के मारे खौल उठे।

"देखा! नालायक छोटे भाई का पक्ष-पात कर उसको सोना-चाँदी दे गया है और हमें सिर्फ़ भुस, गोबर, मिट्टी देकर चला गया है।"—बड़े भाइयों ने सोचा।

"जहाँ जहाँ हम ने चाहा, वहाँ वहाँ हम खड़े हुये। तुम सब के खड़े होने के बाद ही, मैं आखिर में खड़ा हुआ था। इसमें मेरी कोई गलती नहीं है। मेरा भाग्य ऐसा है और तुम्हारा भाग्य वैसा। भला कौन क्या कर सकता है!"—छोटे भाई ने कहा।

"नहीं, नहीं, यह बात नहीं चलेगी। इसका हमें अदालत में फ़ैसला करवाना ही होगा।"—भाइयों ने कहा।

उन्होंने अपने पिता की सलाह की परवाह न की और उज्जयिनी में जाकर, अदालत में दावा दाखिल कर दिया।

न्यायाधिकारी ने पूछा—"तुम्हारे पिता की सम्पत्ति क्या है और कितनी है?"

"हमारे पिता के पास भूमि, गौ, बैल, अनाज का व्यापार, और सोना-चाँदी था।"—चौधरी के लड़कों ने जवाब दिया।

"उन्हीं चीज़ों को तुम्हारे पिता ने तुम्हें दे दिया है। अनाज का व्यापार बड़े भाई के हिस्से में आता है। गौ, बैल वगैरह, दूसरे भाई के, भूमि तीसरे भाई के हिस्से में आती है। सोना-चाँदी सब से छोटे भाई की है। उन्हें आपस में बाँटकर सुख से जिओ।"—न्यायाधिकारी ने इस प्रकार अपना निर्णय दिया।

यह फ़ैसला सुन तीनों भाइयों को बहुत आश्चर्य हुआ। उन लोगों ने आखिर यह जान लिया कि उनके पिता ने सबसे छोटे भाई का पक्षपात नहीं किया था।

बहुत दिन पहिले, किसी देश में एक पुरोहित रहा करता था। उसके एक लड़की थी, जिसका नाम सुशीला था। वह बहुत दिलेर और साहसी थी। एक दिन पुरोहित और उसकी पत्नी रोजी के लिये बाहर गये हुये थे। वे शाम तक भी वापस न लौटे।

सूर्यास्त के बाद, सुशीला ने गुसलखाने में स्नान करने गई। उसे वहाँ पानी के बड़े घड़े के पीछे कोई चोर दिखाई दिया। वह बिना स्नान किये घर में चली गई, और अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया।

फिर थोड़ा और अन्धेरा होने के बाद चोर गुसलखाने से बाहर आ, बरामदे में खड़ा हो गया। आवाज़ बदलकर उसने बुलाया—"बेटी!" वह सोच रहा था कि सुशीला पिता की आवाज समझ दरवाजा खोल देगी।

दरवाज़े के छिद्र में से सुशीला ने चोर को देखकर कहा—"चटखनी फँस गई है, खुल नहीं रही है। पिताजी! बगलवाली खिड़की में से कूदकर आ जाइये, और चटखनी खोल दीजिये। चोर ने सोचा कि उसकी चाल चल गई। वह खुशी खुशी खिड़की की तरफ़ गया। इससे पहिले कि वह अन्दर कूदता, सुशीला गंड़ासा लेकर वहाँ खड़ी हो गई। वह ज्योंही खिड़की में घुसा, उसके सिर पर गंडासा दे मारा।

बाद में सुशीला ने चोर के धड़ के टुकड़े टुकड़े कर दिये। सिर और अंगों को अलग अलग बोरियों में रखकर बाँध दिया। फिर दिया बुझाकर बैठ गई।

थोड़ी देर बाद चोर के बाकी साथियों ने आकर घर का किवाड़ खटखटाया। सुशीला ने पूछा—"कौन है?"

श्रीमती शकुन्तला भार्गव

"काम खतम हुआ कि नहीं?"—उन्होंने धीमे से पूछा।

"बगल की खिड़की के पास आओ, बोरियाँ सौंप दूँगा।"—सुशीला ने धीमे से कहा।

चोर सुशीला की आवाज़ पहिचान न सके। बगलवाली खिड़की के पास गये। सुशीला ने बोरियाँ दे दीं।

"आओ तो, अब चले चलें"—चोरों ने कहा।

"रसोई घर भी देख-दाखकर अभी आता हूँ। तुम चलो, मैं अभी आया।"—सुशीला ने कहा।

"देखना, देर न करना।"—कहकर चोर चले गये।

जब माँ-बाप आये तो सुशीला ने उनसे जो कुछ गुज़रा था, कह दिया। वे अपनी लड़की की बहादुरी पर बहुत सन्तुष्ट हुये। परन्तु उन्हें डर लगने लगा कि बाकी चोर आकर उनकी लड़की से बदला लेंगे।

इस बीच में, चोर जङ्गल में स्थित अपने दुमंजिले मकान में पहुँच गये। जब उन्होंने बोरियाँ खोलकर देखी तो उन्हें सारा मामला मालूम हो गया। उन्होंने सोचा कि यह सब उस पुरोहित की लड़की की करतूत है। उसकी खबर लेनी है। अगले दिन उन्होंने अच्छे अच्छे कपड़े पहिने, और अपने एक साथी को, जिसका नाम राम बिहारी था, अच्छे अच्छे कपड़े पहिनाकर खूब सजाया। तब वे पुरोहित के घर गये।

"सुना है, आपके घर में विवाह की उम्र की लड़की है। आप हमारे इस भाई से शादी कर दीजिये। हम खूब गहने देंगे। विवाह का खर्च भी हमारे जिम्मे रहा।"

पुरोहित बड़ा खुश हुआ। "बिना खर्च के लड़की की शादी हो रही थी। लड़केवाले धनी मालूम होते हैं।"—पुरोहित ने सोचा।

इससे पहिले कि चोर लड़की से बदला लें, अच्छा है, उसको ससुराल भेज दिया जाय। इसलिये उसने उन लोगों की बात मान ली।

"इनके हाव-भाव से ये लोग तो वे चोर ही नज़र आते हैं, जो कल आये थे।"—सुशीला ने अपने पिता से कहा। माँ-बाप ने उसकी कुछ न सुनी।

"पागलपन न दिखाओ। कहीं चोर इतने अच्छे कपड़े पहिनते हैं! जेवर देते हैं!"—उन्होंने पूछा।

उसी दिन शादी हो गई। शाम को दूल्हेवाले दुल्हिन को लेकर चले गये। अन्धेरा होते होते, वे जङ्गल में अपने दुमंजिले मकान पर पहुँचे।

"हत्यारी को अभी मार डालेंगे"—कुछ चोरों ने कहा।

"मेरी शादी तो कर दी। पर मुझे उससे एक बात भी न करने दी और इस बीच में ही तुम उसे मारने जा रहे हो!"—बावला राम बिहारी रोने लगा।

"अच्छा, तो यही सही। पर कल तक वह भाग न जाय कहीं। उसको वहाँ रखना तेरे जिम्मे रहा। उसे कल हम मार देंगे।"—चोरों ने कहा।

चोर नीचे सो गये। सुशीला को दुमंजिले पर भेज दिया। राम बिहारी भी खुशी खुशी उसके पीछे गया। उसके आते ही सुशीला ने कहा—"अरे, अरे, यहाँ इतनी गर्मी है! दम घुटा जा रहा है।"

"तुम बाहर नहीं जा सकोगी। वे तुम्हें मार देंगे।"—राम बिहारी ने कहा।

"तुम मेरे पति हो न! कुछ भी हो, पन्द्रह मिनट मुझे बगीचे में टहल आने दो।"—सुशीला ने कहा।

"भागना चाहती हो न! मुझे सब मालूम है।"— राम बिहारी ने कहा।

"अगर तुम्हें इतना शक है, तो कमर में रस्सी बाँध कर मुझे खिड़की में से उतार दो। कुछ देर टहलने के बाद, मैं रस्सी खींचूगी, तब तुम मुझे ऊपर खींच लेना।"—सुशीला ने कहा।

यह राम बिहारी को भी पसन्द आया। उसने सुशीला की कमर में रस्सी बाँध कर, उसको खिड़की में से बगीचे में उतार दिया। सुशीला ने नीचे उतरते ही रस्सी खोल ली, और उसको एक बकरी की कमर में बाँधकर वह चम्पत हो गई। बकरी के इधर उधर घूमने के कारण,

राम बिहारी के हाथ में रस्सी खिंची। वह उसको ऊपर खींचने लगा। बकरी 'मैं मैं' कर चिल्लाने लगी।

"अरे, चुप भी हो! वे सुन लेंगे तो मेरी खबर लेंगे।"—राम बिहारी ने कहा। परन्तु बकरी और भी ज़ोर से चिल्लाने लगी। जैसे तैसे राम बिहारी ने उसको ऊपर खींचा। "अरे मेरी बीवी बकरी हो गई है।"—वह रोने लगा।

बकरी की 'मैं मैं' और बावला का रोना-चिल्लाना सुन, चोर भी उठकर ऊपर आये। उन्हें मालूम हो गया कि सुशीला बावले को

चकमा देकर भाग गई है। वे झट घोड़ों पर चढ़ उसको खोजने के लिये निकल पड़े।

तब तक सुशीला जङ्गल में काफ़ी दूर पहुँच गई थी। घोड़े की चाप सुनकर, वह एक बड़े पेड़ का खोखला देखकर, उसमें घुसकर बैठ गई। चोर आये। उन्हें सुशीला का कहीं भी पता न लगा। उनमें से एक ने पेड़ के खोखले में तल्वार घुसाकर टटोला। तल्वार सुशीला के बाँह में घुस गई। परंतु उसने चूँ तक नहीं की! जब चोर ने तल्वार बाहर खींची, तो उसने अपनी साड़ी से उसको पोंछ दिया। तल्वार पर खून के निशान न पा, चोर ने सोचा कि खोखले में कोई नहीं है।

चोर जब बहुत दूर चले गये तो सुशीला खोखले में से निकलकर, बाहर सड़क पर आ गई। वह सड़क पर चली जा रही थी तो उसे घोड़ों की टप टप सुनाई दी। तब चरी की एक गाड़ी चली आ रही थी।

"चाचा, चाचा! चोर मुझे ढूँढ रहे हैं, ज़रा मुझे चरी के नीचे छुपा लो।"—सुशीला ने गाड़ीवाले से कहा।

गाड़ीवाले ने सुशीला को चरी के नीचे छुपा दिया। और इस तरह गाड़ी चलाने

लगा, जैसे कुछ मालूम ही न हो। इस बीच में चोर वहाँ आये। गाड़ीवाले को रोककर पूछा—"इस तरफ़ से कोई दुल्हिन गई है क्या?"

"मैंने तो नहीं देखा है।"—गाड़ीवाले ने सीधे-सादे ढंग से कहा।

एक चोर ने तरी में एक दो जगह तल्वार भोंककर देखा। तल्वार सुशीला के पैर में लगी। पहिले की तरह सुशीला ने तल्वार को साड़ी से पोंछ दिया। तल्वार पर खून न देख चोर को भी तसल्ली हुई।

सुशीला चोरों से पीछा छुड़ाकर सबेरे होते होते पिता के घर पहुँची। लड़की को देखकर पुरोहित हक्काबक्का रह गया।

"क्यों बेटी! तुम्हारा पति कहाँ है? अकेली क्यों चली आई हो? शरीर पर ये खून के धब्बे क्या हैं?"—पिता ने पूछा।

"मैंने कहा था न पिताजी! वे चोर थे। उन्होंने मुझे मार देना चाहा। जैसे तैसे मौत से बचकर भाग आई हूँ।" सुशीला ने सब सुनाया। पिता को बड़ा दुःख हुआ।

"अब भी हमारी खैरियत नहीं है। मुझे कहीं छुपाकर रख दो। चोर मुझे खोजते हुये ज़रूर आयेंगे। तुम उन्हें राज-सैनिकों को सौंप देना।"—सुशीला ने कहा।

पुरोहित ने सुशीला को एक अल्मारी में छिपा दिया, और शहर के कोतवाल के पास जाकर सारी कहानी सुनाई। "हुज़ूर आप वेष बदलकर बीस सिपाहियों को भेजिये। मैं आपके हाथों में चोर सौंप दूँगा।"

मामूली कपड़े पहिनकर सिपाही पुरोहित के घर के वरांडे में, कालीनों पर बैठकर आराम से आपस में गप्पें मारने लगे।

इतने में बढ़िया पोशाक पहिने चोर घोड़ों पर से उतरे। उनको देखते ही

खुशी खुशी पुरोहित उनकी आगवानी करने लगा।

"हम जल्दी काम पर आये हैं। वक्त नहीं है।"—चोरों न कहा।

"लड़की तो ठीक है?"—पुरोहित ने पूछा। यह अनुमान कर कि सुशीला पिता के घर नहीं आयी है, उन्होंने कहा—"लड़की तो ठीक है। उसने अपनी माँ और आपसे कहने के लिये कहा है कि वह अच्छी तरह है। हम यही बताने आये हैं। हमें अभी जाना है। शहर में जरा जरूरी काम है।"

"घर तक आकर, बिना भोजन किये मैं नहीं जाने दूँगा। जल्दी ही रसोई हो जायेगी। अन्दर आईये।"—पुरोहित ने बार बार कहा। चोर और कर ही क्या सकते थे? उन्होंने घर के अन्दर पैर रखा।

वहाँ कालीनों पर बैठे लोगों को चोरों ने देखा।

"ये कौन हैं?—चोरों ने सन्देह करते हुये पुरोहित से पूछा।

"लड़की का विवाह हो गया है, यह जानकर हमारे सम्बन्धी आये हुये हैं" कहते हुये पुरोहित ने चोरों को सिपाहियों को दिखाकर बताया—"ये ही हमारे लड़की के ससुरालवाले हैं।"

सिपाहियों ने झट चोरों को चारों तरफ़ से घेर लिया। एक को भी न जाने दिया। सबको पकड़ कर ले गये।

तब सुशीला ने कोतवाल को साथ ले जाकर जङ्गल में चोरों का दुमंजिला मकान दिखाया। उस मकान में बहुत सारा चोरी का माल बरामद हुआ। उसमें से कुछ को कोतवाल ने सुशीला को इनाम के तौर पर दिया।

सरदार का भाई

किसी देश में एक किसान के एक लड़का था। बहुत दिनों तक उसकी कोई और सन्तान न हुई। परन्तु बुढ़ापे में एक और लड़का पैदा हुआ। जब दूसरा लड़का छोटा था, तभी बड़े लड़के ने राजधानी में जाकर राजा की फौज में नौकरी कर ली थी। पहिले तो वह सिपाही ही रहा, फिर धीमे धीमे वह सरदार बन गया।

जब छोटा लड़का बड़ा हुआ तो वह भी राजा की फौज़ में भरती हो गया।

एक बार घोड़े पर आते हुये अपने भाई को पहिचानकर उसने कहा— "भाई, मैं तेरा छोटा भाई हूँ। मैं भी राजा की फौज़ में सिपाही बन गया हूँ।" परन्तु सरदार ने अपने भाई को न पहिचाना। "अबे, तू कौन है! हट रास्ते से" कहते हुये उसने भाई को एक लात मारी।

साथ के सिपाही यह देखकर अपनी हँसी रोक न सके। वे एक तरफ़ मुँह करके हँसने लगे। बड़े भाई का व्यवहार देख छोटे भाई को बहुत दुःख हुआ। क्योंकि वह सिपाही के तौर पर काम कर रहा था, इसलिये कभी कभी उसे सरदार के पास जाना ही पड़ता था। पर जब जब वह जाता, उसको बड़ा दुःख होता। वह शर्मिन्दा होता। इसलिये बिना किसी को कहे वह गायब हो गया, और एक घने जङ्गल में ज़िन्दगी बसर करने लगा।

कुछ दिनों बाद राजा अपनी कुछ फौज़ के साथ उस जङ्गल में शिकार खेलने के लिये आया। राजा को एक क्षण के लिये एक मस्त हरिण दिखाई दिया। फिर वह बिजली की तरह भाग गया। राजा घोड़े पर चढ़ उसका पीछा करने लगा। हरिण थोड़ी देर भागा, फिर तैरकर एक नाला

श्री बैकुंठनाथ वानवी

पार कर, घने जङ्गल में अदृश्य हो गया। राजा, कुछ भी हो, उसे पकड़ना चाहता था। इसलिये नाला पारकर वह भी जङ्गल में घुसा।

पर कहीं हरिण का पता न लगा। चारों ओर अन्धेरा था। बहुत खोजा, पर कहीं पद-चिन्ह भी न दिखाई दिये। राजा को पूर्व और पश्चिम का भी भान न रहा। जब राजा यह सोच रहा था कि उस जङ्गल में से कैसे बाहर निकला जाय कि अचानक सरदार का भाई वहाँ आ पहुँचा।

"तुम कौन हो भाई! यहाँ क्यों आये हो?"—सरदार के भाई ने राजा से पूछा।

"मैं राजा की फौज़ में काम करता हूँ। शिकार खेलते खेलते रास्ता भटक गया हूँ। जैसे तैसे मुझे इस जङ्गल से बाहर ले जाओ भाई"—राजा ने कहा।

"अब तो अन्धेरा हो गया है। रात यहीं काट दो। सबेरे होते ही मैं तुम्हें तुम्हारे घर पहुँचा दूँगा।"—कहते हुये सरदार के भाई ने रास्ता निकाला।

वे बहुत दूर पैदल चलकर एक झोंपड़े में पहुँचे।

"बाप रे बाप! जान बची। रात इस झोंपड़ी में काटी जा सकती है।"—सरदार के भाई ने कहा।

उस झोंपड़ी में एक बुढ़िया रहती थी।

"नानी! हमारे लिये तुरंत खाना परोसो। भूख से मरे जा रहे हैं।"—सरदार के भाई ने कहा।

"खाने को तो मेरे पास ही नहीं है। भला तुम्हें क्या परोसूँ, बेटा!"—बुढ़िया ने कहा।

सरदार के भाई ने छुरी दिखाकर कहा"—"क्यों बुढ़िया झूठ बोलती हो! सिर धड़ से अलग कर दूँगा, समझ क्या रखा है! खबरदार!"

बुढ़िया डर गई। अन्दर जाकर खाने की चीजें लाकर दोनों को तुरंत परोसा। दोनों ने भरपेट खाना खाया।

"नानी, हमें सोने की जगह भी दिखाओ"—सरदार के भाई ने कहा।

"तुम झोंपड़ी में नहीं सो पाओगे। घर के पीछे एक मचान बना हुआ है। वहाँ अच्छी हवा भी आती है। उस पर आराम से सो सकते हो"—बुढ़िया ने कहा।

सचमुच, घर के पीछे एक मचान था, और उस पर चढ़ने के लिये एक सीढ़ी भी थी। वे उस पर चढ़ बैठे।

"दोनों का सो जाना अच्छा नहीं। तुम जागते रहो, अगर ज़रूरत हो तो मुझे जगा देना। थोड़ी देर बाद मैं उठ बैठूँगा, और पहरा दूँगा और तुम सो जाना।"—सरदार के भाई ने कहा।

राजा मान गया। सरदार का भाई आँख मूँदकर लेट तो गया, पर उसको नींद न आई। थोड़ी देर बाद जब उसने आँख खोलकर देखा तो राजा बैठा बैठा ऊँघ रहा था। सरदार के भाई ने उठकर राजा के पीठ पर जोर से मारकर डाँटा-डपटा—"क्या इसे ही पहरा कहते हैं?"
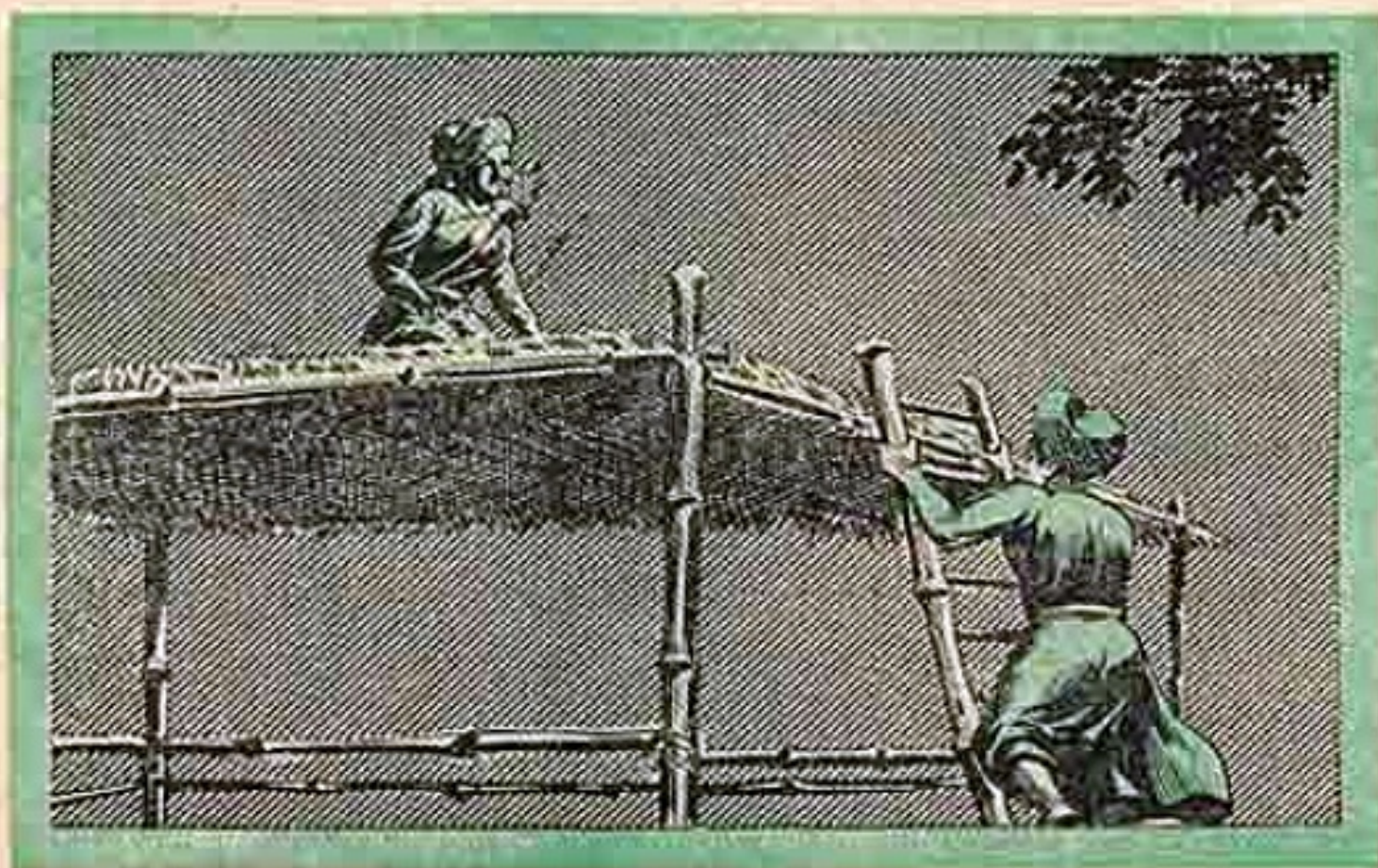
राजा ने कहा—"नहीं, नहीं, मैं सोया हुआ नहीं हूँ।" परन्तु क्योंकि वह शिकार के कारण खूब थका हुआ था, उसकी आँखें फिर बन्द होने लगीं, उसे नींद आ गई।

आधी रात को कुछ चोर उस झोंपड़ी के पास आये। वे हर रात वहाँ मिला करते थे।

"नानी भोजन परोसो!"—चोरी का माल एक तरफ़ रखते हुये उन्होंने बुढ़िया से कहा।

"क्या परोसूँ, बेटा! तुम्हारे लिये जो रसोई बनाई थी, दो धूर्त आकर खा गये। मैंने जब कहा कि मैं नहीं दूँगी, तो उन्होंने छुरी दिखाई। मारने की धमकी दी।"—बुढ़िया ने कहा।

"हूँ! कौन हैं वे?"—चोरों ने गुस्से में पूछा।

"न जाने कौन हैं। वे मचान पर सोये हुये हैं।"—बुढ़िया ने बताया।

"मैं जाकर उनकी खबर लेता हूँ" कहकर एक चोर चला। वह जब सीढ़ी पर चढ़ रहा था, तो मचान को हिलता देख, सरदार का भाई छुरी लेकर, चौकन्ना हो बैठ गया।

चोर जल्दी जल्दी सीढ़ी पर चढ़ा। उसका सिर दीखते ही, सरदार के भाई ने उसे काट दिया और धड़ को ऊपर खींच लिया।

गये हुये चोर को वापिस न आता देख एक और चोर खोज में निकला। उसे भी सरदार के भाई ने मार डाला। इस तरह एक एक करके सब चोर उसकी छुरी के शिकार हो गये।

सवेरे राजा उठा। चोरों के शवों को देखकर वह हैरान रह गया। सरदार के भाई ने राजा से जो कुछ गुज़रा था, कह सुनाया। दोनों मचान पर से नीचे उतरकर आये।

"क्यों वे चुडैल! तू क्या यही काम करती है। देख अभी तेरी खबर लेता हूँ। रख चोरी का सारा माल सामने।"—सरदार के भाई ने धमकी दी।

बुढ़िया ने अल्मारी में से बहुत सारा सोना निकालकर बाहर रखा। सरदार के भाई ने दुपट्टे में कुछ सोना बाँध लिया। कुछ जेब में रख लिया, और राजा से भी लेने को कहा।

"राजा के ख़ज़ाने में पैसे की कोई कमी नहीं है। मुझे नहीं चाहिये।"—राजा ने कहा।

बाद में, सरदार के भाई ने जङ्गल में एक रास्ता दिखाकर कहा—

"यह रास्ता सीधा राजधानी पहुँचेगा।"

राजा ने उसको धन्यवाद देते हुये कहा—"कभी हमारे घर क्यों नहीं आते! मैं शायद तुम्हारे काम आ जाऊँ।"

"भला तुम से क्यों छुपाऊँ! मेरे शहर में कदम रखते ही मुझे पकड़कर क़ैद में डाल दिया जायेगा। मैं सिपाही का काम छोड़कर भाग जो आया हूँ।"—राजा से सरदार के भाई ने अपनी सारी कहानी कह सुनायी।

"राजा मेरी बात ज़रूर सुनेंगे। अगर मैने तुम्हारी बहादुरी और साहस के बारे में कहा तो वे तुम्हें माफ़ ही न करेंगे, बल्कि इनाम भी देंगे। यह लो अंगूठी। अगर यह अंगूठी तुमने दिखाई तो तुम सीधे दरबार में जा सकोगे।"—यह कह राजा वहाँ से चला गया।

कुछ दिनों बाद बहुत सोच-साचने के बाद सरदार के भाई ने दरबार में जाने की ठानी। वह ज्यों ही राजधानी में पहुँचा, तो जो कोई सिपाही दिखाई पड़ता, हाथ उठाकर सलाम करता और रास्ता दिखाता। सरदार के भाई ने जेब में रखा सोना उनको देना शुरू किया।

जैसे जैसे वह दरबार के पास पहुँचता गया, वैसे वैसे सलाम करनेवाले गुलामों की संख्या भी बढ़ने लगी। "देखा यह आदमी कितना मूर्ख है। लगता है, इसने दरबार में सब को कह दिया है कि मुझे चोरी का सोना मिला है। इसीलिये ये मेरी ऐसी आगवानी कर रहे हैं, जैसे कोई मैं सरदार हूँ।"—सरदार के भाई ने सोचा।

पर ज्यों ही उसने दरबार में कदम रखा और सिंहासन पर राजा को देखा तो वह भौंचका होकर खड़ा हो गया। उसे सब मालूम हो गया—"अरे अरे! मैंने ठीक पहरा न देने पर राजा को ही डाँटा था।"—वह सोच रहा था।

परन्तु राजा ने सरदार के भाई का खूब स्वागत किया। दरबारियों के सामने उसके धैर्य-साहस की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुये कहा—"मैं इसको मेरी प्राण-रक्षा के पारितोषक रूप में सरदार नियुक्त करता हूँ।" सरदार के ओहदे पर आसीन उसके भाई को बरख्वास्त कर और उसको छोटे भाई के नीचे नौकर बना दिया गया।
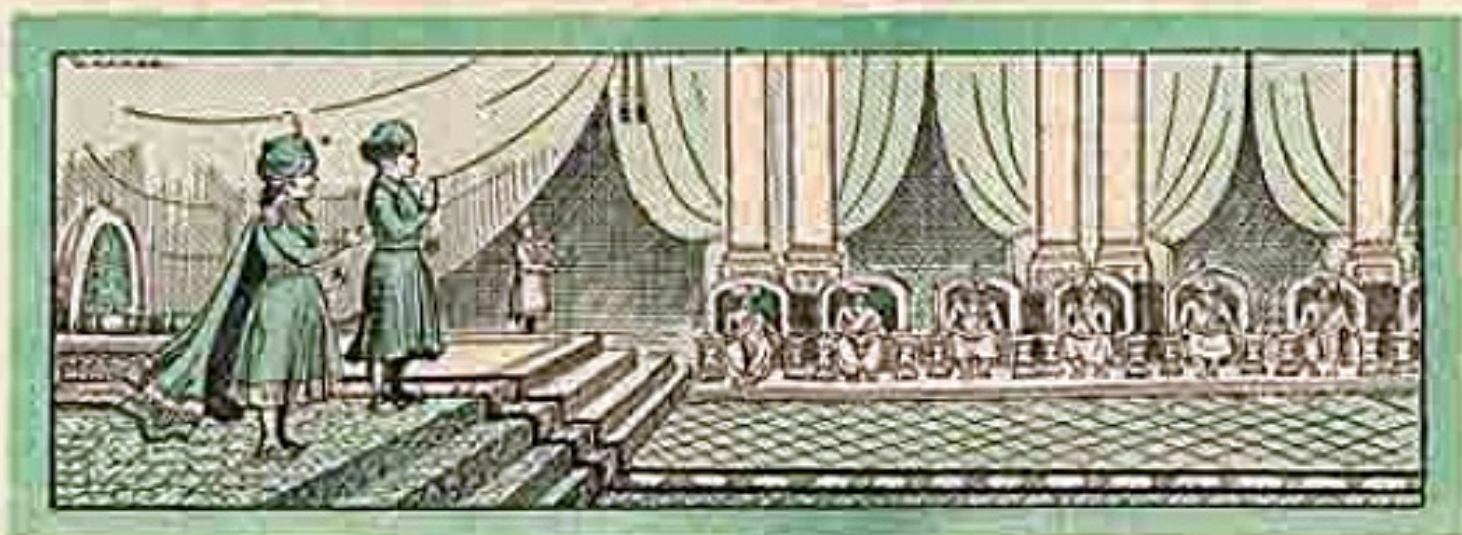
सच बात
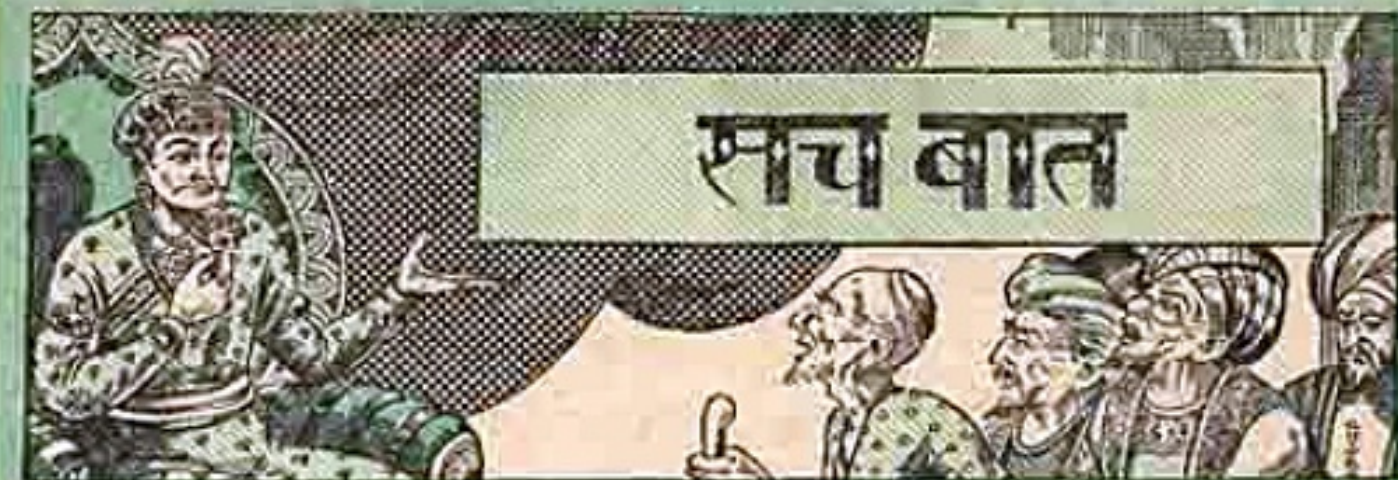
बादशाह अकबर के दरबार में बीरबल विदूषक और आंतरंगिक मित्र के रूप में रहा करता था। तानसेन दरबारी गवैय्या था। तानसेन का गाना सुनने के लिये दूर दूर से लोग आया करते और अपने अपने देश जाकर उसकी प्रशंसा किया करते।

लेकिन तानसेन को गर्व न था। फिर भी दूसरे मुसलमानों का ख्याल था कि तानसेन के समान कोई न था। इतना ही नहीं, वे अक्सर यह कहा करते कि बीरबल की जगह पर तानसेन को नियुक्त किया जाना चाहिये। अकबर को जब यह बात मालूम हुई तो उसको बड़ा गुस्सा आया। उसने कहा—"चाहे तुम कुछ भी कहो, बीरबल जैसा आदमी जन्म-जन्मों में एक भी नहीं दिखाई देगा।" तब तो मुसलमान कुछ न कह पाये। पर बाद में उन्होंने एक सभा का प्रबन्ध किया। बादशाह को भी निमन्त्रित किया गया। उस दिन बड़ी गर्मी थी। घुटन थी दीयों में तेल था, बत्ती भी थी, पर अन्धेरा होने पर भी उन्हें जलाया नहीं गया था। तानसेन के दीपक राग गाते ही दीये अपने आप जल गये; और जब उसने मेघमलार गाना शुरू किया तो बारिश होने लगी और घुटन कम होने लगी।

तब एक बूढ़े मुसलमान ने अर्ज़ किया—"हुजूर! अब तो आपको मालूम हुआ। तानसेन क्या कमाल कर सकता है! इसी वजह से लोग कह रहे हैं कि वज़ीर के ओहदे के लिये तानसेन बीरबल से कहीं अच्छे हैं!"

तब अकबर ने कहा—"हो सकता है, तानसेन बहुत बड़ा गवैय्या हो, पर वह

श्री हृदयेश्वर शरद

बीरबल का मुकाबला नहीं कर सकता। चाहते हो, तो मैं साबित करके दिखाऊँगा!"

कुछ दिनों बाद बादशाह ने आवा देश के राजा के नाम एक चिट्ठी लिखवाई। उस चिट्ठी पर सील लगाकर, बीरबल और तानसेन को बुलाकर कहा—"तुम्हें इस चिट्ठी को लेकर आवा राजा के पास जाना है। बहुत जरूरी काम है। यह काम तुम दोनों के सिवाय कोई नहीं कर सकता!"

वे दोनों चल दिये। तानसेन मन ही मन यह सोचकर खुश हो रहा था—"यह कोई बहुत ही ज़रूरी काम होगा। उस राजा को मैं अपना संगीत सुनाकर इनाम पाऊँगा....!"

पर बीरबल यही सोचता आ रहा था—"हो न हो, इसमें कोई बड़े रहस्य की बात होगी!" उसे लाख सोचने पर कुछ सूझ न रहा था। जैसे-तैसे बर्मा देश पहुँचकर उन्होंने आवा राजा का दर्शन किया।

राजा ने चिट्ठी पढ़ी। उसमें लिखा हुआ था—"मेरे दो सेवक ये चिट्ठी लेकर आपके पास आ रहे हैं। एक भारी अपराध करने के कारण इनको दण्ड देना पड़ रहा है। क्योंकि यह काम खुफ़िया तरीके से किया जाना चाहिये, मैं आपके पास इन्हें भेज रहा हूँ। आप इन्हें मरण-दण्ड दीजिये!"

राजा ने पढ़कर चिट्ठी मन्त्री को दी। उसने यह सोचकर कि इसमें कोई रहस्य है, सलाह दी—"महाराज! इनको एक सप्ताह जेल में रखिये, बाद में जो दण्ड देना हो, दीजिये!" बीरबल और तानसेन के हाथों में हथकड़ियाँ डाल दी गईं और उनको जेल भेज दिया गया।

तानसेन तो पागल-सा हो गया। बीरबल की तरफ़ लाचारी से देखने लगा, जैसे पूछ रहा हो—"बताओ, क्या किया जाय?" तब बीरबल ने उसके कान में कुछ कहा।

सप्ताह का समय बीत गया। जल्लाद आकर इनको बध्य-स्थल पर ले गये। वहाँ तानसेन और बीरबल आपस में झगड़ने लगे कि "पहिले मुझे मारो! पहिले मुझे मारो" जल्लादों ने राजा के पास जाकर अर्ज़ किया—"हुज़ूर, ये दोनों पागल हैं।"

राजा ने उन्हें बुलाकर पूछा—"क्यों इस तरह आपस में झगड़ रहे हो?"

"राजा! अगर हमने कह दिया तो हमारा बहुत नुकसान होगा। इसी कारण हम कहना नहीं चाहते।"—बीरबल ने कहा।

"सच बताया तो मारे नहीं जाओगे। सिर्फ़ आजीवन कैद में रखे जाओगे।"—राजा ने कहा।

बीरबल ने यों कहना शुरू किया—"राजा! बहुत दिनों से हमारा राजा आवा राज्य को अपने राज्य को मिलाने की सोच रहा है। परन्तु आपकी सेना और शक्ति देखकर वह संकोच कर रहा है। एक बार एक ज्योतिषी ने आकर कहा"—"राजा! क्यों आप फ़िक्र करते हैं? अपने राज्य से दो व्यक्तियों को किसी बहाने पर आवा राजा के पास भेजें। अगर राजा ने उन्हें मरवा दिया तो जो पहिले मारा जायेगा, वह उस देश का राजा बनेगा। बाद मारा जानेवाला मन्त्री बनेगा। तब वे तेरे सामन्त होकर रहेंगे। इसी तरह से तुझे वह राज्य मिल सकता है, लड़-झगड़कर हरगिज़ नहीं मिल सकता। इसीलिये हम दोनों को भेजा गया है। यह बात बताने के कारण हमारा राजा हमें ज़रूर मरवा देगा।"

तब राजा मन्त्री की तरफ़ देखने लगा। मन्त्री ने तब धीमे धीमे यों कहा—"राजा! हमें इनके आपसी झगड़े के कारण सारा रहस्य

मालूम हो गया है। अगर हम इन्हें मारते हैं तो हमारा राज्य हमारे हाथ में न रहेगा। इन्हें वापिस भेजना ही अच्छा है।"

मन्त्री की बात का विश्वास कर राजा ने बीरबल से कहा—"तुम्हें मरवा डालने के लिये तुम्हारे राजा ने चिट्ठी भेजी है। हुक्म पालन करने के लिये हम उसके कोई नौकर नहीं हैं। निर्दोषियों को मारकर हम क्यों पाप मोल लें?"

तब बीरबल ने सविनय कहा—"महाराज! यह आप के लिये ठीक नहीं है। मैंने तो आप से पहिले ही कहा था कि रहस्य बता देने से हमारी हानि होगी। जैसे मैंने कहा था, वैसा ही हो रहा है।"

"वह सब हम नहीं जानते। जान बूझकर भला कौन विष खाता है? जाओ, जाओ! नहीं तो बाहर भिजवा दूँगा।"—राजा ने डरा-धमकाकर कहा।

भय का अभिनय करते हुये बीरबल ने कहा—"अच्छा तो इजाज़त हो" तानसेन का हाथ पकड़कर वह बाहर चला गया। थोड़े दिनों बाद वे फिर दिल्ली पहुँचे।

तानसेन ने अकबर बादशाह को देखते ही कहा—"हुज़ूर! अगर बीरबल ही न होता तो मैं आपके सामने इस वक्त न होता। इसकी अक़्लमन्दी ने हम दोनों की जान बचाई है।" तानसेन ने सारा वृत्तान्त बादशाह अकबर से कह सुनाया।

तब बादशाह ने उन सब मुसल्मानों को बुलाया, जो उसकी बात पर यकीन न करते थे। उसने यह भी बताया कि कैसे उसने इनकी अक़्लमन्दी परखने के लिये चाल चली थी। तब उन्हें यकीन हुआ कि जो कुछ बादशाह ने कहा था, वह सही था।

तब से बीरबल के प्रति इनकी ईर्ष्या जाती रही, और वे उसका आदर करने लगे।

सूर्य

सब नक्षत्रों की अपेक्षा, सूर्य सबसे अधिक समीप है। सूर्य के बाद, "आल्फा सेन्टारि" नाम का नक्षत्र आता है।
१,८६,००० मील, की सेकण्ड के हिसाब से सूर्य के प्रकाश को भूमि तक पहुँचने के लिये आठ मिनट लगते है। परन्तु आल्फा सेन्टरि से प्रकाश आने के लिये करीब करीब साढ़े चार वर्ष लगते हैं। इससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि अन्य नक्षत्रों की अपेक्षा सूर्य हमारे कितने समीप है।

* आकाश में, सूर्य से कई गुना बड़े नक्षत्र भी हैं। "पप्सिलान आरिगे" दो नक्षत्रों की जोड़ी है। उसमें से एक सूर्य से २५० गुना अधिक, और दूसरा ३०,०० गुना अधिक बड़े हैं।

* सूर्य इतना प्रकाशमान है कि उसको देखना मुश्किल है। परन्तु सूर्य में कुछ धब्बे हैं। अगर उनको रोज़ देखें तो लगेगा कि वे दाईं तरफ़ से बाईं तरफ़ को खिसक रहे हैं। सूर्य के स्व परिक्रमण के कारण ऐसा मालूम होता है।

* सूर्य की मध्य रेखा का धब्बा, ध्रुव के धब्बों की अपेक्षा अधिक तेज़ी से घूमता है। इससे मालूम होता है सूर्य भूमि की तरह गोल नहीं है। और सूर्य के विविध प्रान्त भिन्न भिन्न गति से घूमते हैं।

* कहा जाता है कि जब सूर्य से निकलनेवाले गैसों में भँवरें आने लगती हैं। वे धब्बे के रूप में हमें दिखाई देते हैं। यद्यपि सूर्य के और भागों के मुकाबले में ये काले नज़र आते हैं, परन्तु इनमें भी अपरिमित प्रकाश रहता है।

* सूर्य के धब्बों का भूमि पर प्रभाव पड़ता है। भूमि के चारों ओर हमेशा विद्युत तरंगें प्रवाहित होती रहती हैं। जब सूर्य के धब्बे ठीक भूमि के सामने आते हैं, तो विद्युत तरंगों में उथल-पुथल मच जाती हैं।

* सूर्य के धब्बों की संख्या घटती बढ़ती रहती है। ग्यारह वर्षों में, कहा जाता है, ये धब्बे घूम-फिरकर अपनी जगह आ जाते हैं।

रंगिन चित्र - कथा : चित्र - ७

रानी ने कहा था न कि वह राक्षस की इच्छा पूरी करेगी! बिना किसी के देखे उसने अंगूठी को अपनी आँखों पर लगाया और राक्षस की लड़की को दिखाया। दूसरे ही क्षण वह राक्षस-कन्या एक सुन्दर मानव कन्या के रूप में परिवर्तित हो गई। सब को आश्चर्य हुआ। राक्षसी के आनन्द का तो ठिकाना ही न था।

रानी को कोई दिव्य स्त्री समझकर राक्षसी स्वयं झुक गई। ज्यों ही राक्षसी नम्र हुई, रानी ने कहा कि उसको जादू का डंडा चाहिये। बिना किसी आनाकानी के राक्षसी ने अपना जादू का डंडा दे दिया। तब रानी ने कहा—"लोगों के कल्याण के लिये मैं इसका उपयोग करूँगी।"

इसके बाद, रानी किले के अन्दर गई। वहाँ बन्दी किये गये अपने पति को देखा। ज्योंही उसको प्रेम करनेवाली पत्नी दिखाई दी, उसका शाप दूर हो गया। गधे का सिर दूर हो गया, और उसका मुहँ मनुष्य का हो गया।

"मुझे अपनी जल्दबाजी का अनुचित असर हटाने के लिये इतना सब कुछ करना पड़ा।"—कहते हुये रानी ने अपनी सारी कहानी सुनाई। तभी वह अप्सरा उसको दिखाई दी। "रानी, मुझे मेरी अंगूठी दो।"—उसने कहा। रानी ने दे दी। ज्यों ही अंगूठी अप्सरा के हाथ में गई कि तुरंत वह जादू के पहिये के रूप में बदल गई।

तब उसने कहा—"रानी! इसी पहिये को लेकर मेरा और राक्षसी का झगड़ा चला आया है। परन्तु इसी पाहिये के कारण तुम्हारे पति पर शाप लगा। और इसी के कारण तुम इतनी मुसीबतें झेल रही हो। कुछ भी हो—फिर इसी पहिये ने अंगूठी के रूप में तुम्हारी मदद भी की। बुढ़िया, आम का पेड़, पंखोंवाला घोड़ा—ये सब मेरी कल्पना मात्र थीं। अब राक्षसी द्वारा संसार को कोई हानि न पहुँच सकेगी, और उसकी लड़की तुम्हारे आश्रय में ही रहेगी। पंखोंवाले घोड़े पर चढ़कर तुम तीनों अपने राज्य में जाओ, और सुख से रहो।"—वह अप्सरा तब अदृश्य हो गई। (समाप्त)

फोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

अगस्त १९५५ :: पारितोषिक १०)

कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें ।

ऊपर के फोटो के लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर संबन्धित हों। परिचयोक्तियाँ पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिख कर निम्नलिखित पते पर भेजनी चाहिये।

फोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता
चन्दामामा प्रकाशन
वडपलनी :: मद्रास - २६

जून – प्रतियोगिता – फल

जून के फोटो के लिये निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं। इनके प्रेषिका को १० रु. का पुरस्कार मिलेगा।

पहिला फोटो : **अरे, सुनो खबर !** दूसरा फोटो : **नहीं देखो इधर !**

श्री. कैलाश, द्वारा : जे. ऐ. गोकुलदास, रेल्वे मार्केट, खरगपुर।

समाचार वगैरह

पिछले दिनों बान्डुन्ग में एशिया और अफ्रीका के नेताओं की एक महान सभा हुई। सभा में जापान से लेकर, सुदूर पश्चिम अफ्रीका के कई देशों के प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया। मध्य एशियाई देशों के प्रतिनिधि भी इसमें शामिल थे।

बान्डुन्ग इन्डोनिशिया का एक प्रधान और आधुनिक नगर है, जो प्राकृतिक शोभा और औद्योगिक उन्नति के लिये प्रसिद्ध है। संसार के इतिहास में पहिली बार एशिया और अफ्रीका के देश इतनी संख्या में और संगठितरूप में मिले थे। उन्होंने परस्पर सम्बन्धित विषयों पर विचार-विमर्श किया।

एशिया और अफ्रीका के देश पिछड़े हुये समझे जाते हैं। उनमें से कई देश हाल ही में स्वतन्त्र हुये हैं। पश्चिमी देश उनका शोषण भी करते आये है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक क्षेत्र में प्रायः उनकी अवहेलना होती थी।

परंतु यह सभा एशिया और अफ्रीका के नव जागरूकता का प्रतीक थी, पश्चिम के लिये चेतावनी भी। इस सभा का नेतृत्व भारत ने किया था।

• • •

राजपुताने के एक पुरानी व प्रसिद्ध जाति ने ऐतिहासिक चित्तौड़ गढ़ के किले में प्रवेश कर अपनी चार सौ वर्ष पुरानी प्रतिज्ञा पूरी की। इस जाति

के लोग "गाड़िया लोहार" कहलाये जाते हैं।

इस जाति ने राणा प्रताप के साथ यह प्रतिज्ञा की थी कि वे चित्तौड़ गढ़ में तब तक प्रवेश न करेंगे, जब तक वह मुसलमानों के हाथ से मुक्त न हो जाये। उन्होंने उसकी स्वतन्त्रता के लिये नित प्रयत्नशील रहने का भी निश्चय किया था।

गाड़िया लोहार, जैसा कि नाम से स्पष्ट है, राजपुताना में, गाड़ियों पर इधर उधर फिरते रहते हैं। उनके न कोई निश्चित गाँव है, न घर ही। वे पेशे से लोहार हैं। शिव की पूजा करते हैं। वे बहुत गरीब हैं, और हिन्दुओं द्वारा अछूत समझे जाते हैं।

अब चूँकि भारत पूर्णतः स्वतन्त्र हो गया है, इसलिए श्री नेहरू ने स्वयं गाड़िया लोहारों की एक विशाल टोली को, चित्तौड़ के किले में प्रवेश कराया।

• • •

हिन्दी के प्रचार के लिये भारतीय सरकार एक निर्दिष्ट योजना के अनुसार अपना कार्य करती जा रही है। संसद का बहुत कुछ कार्य अब हिन्दी में होने लगा है। लिखा-पढ़ी भी हिन्दी में होना आरम्भ हो गई है। सदस्य व मन्त्री भी हिन्दी को अपनाने लगे हैं। डाकखाने में हिन्दी में तार देने की सुविधा की जा रही है।

यह भी योजना बनाई जा रही है कि भारतीय परीक्षाओं में क्रमशः हिन्दी का माध्यम अनिवार्य बना दिया जाय।

सरकार की तरफ से कई उपयोगी प्रकाशन भी हिन्दी में निकल रहे हैं। कई पत्र-पत्रिकाओं का भी प्रचुरण हो रहा है।

चित्र - कथा
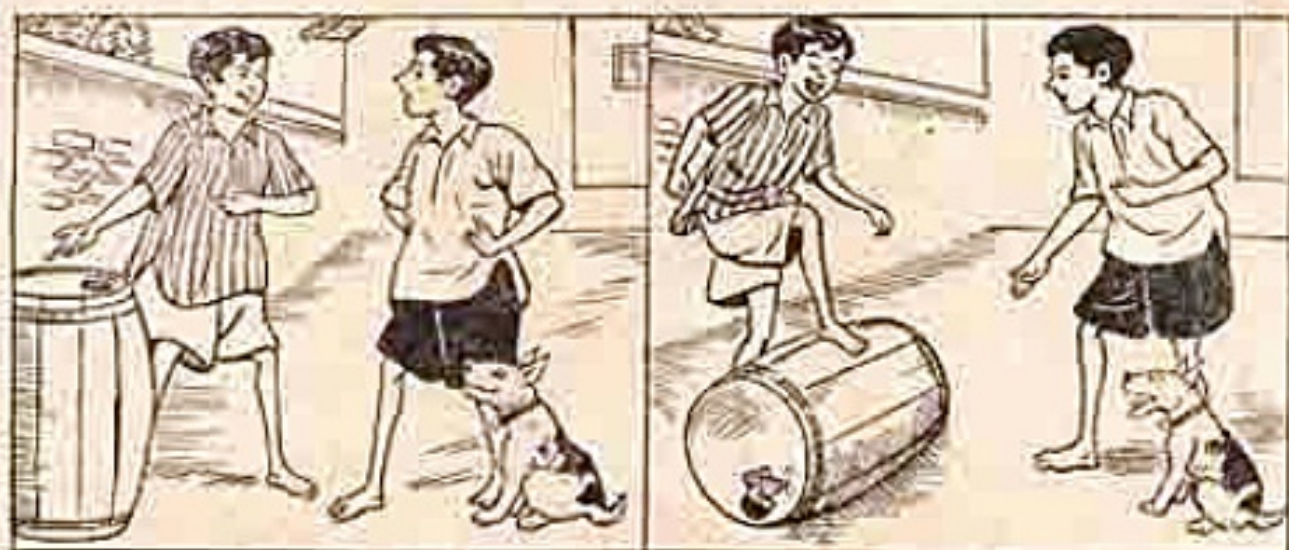
दास और वास शहर में सरकस देखने गये। वहाँ उन्होंने हाथी को एक पीपे को आगे पीछे धकलते हुये देखा। इस दृश्य ने उन्हें बड़ा आकर्षित किया। "वह तो मैं भी कर सकता हूँ"—कहकर वास पीपे पर खड़ा हो गया।
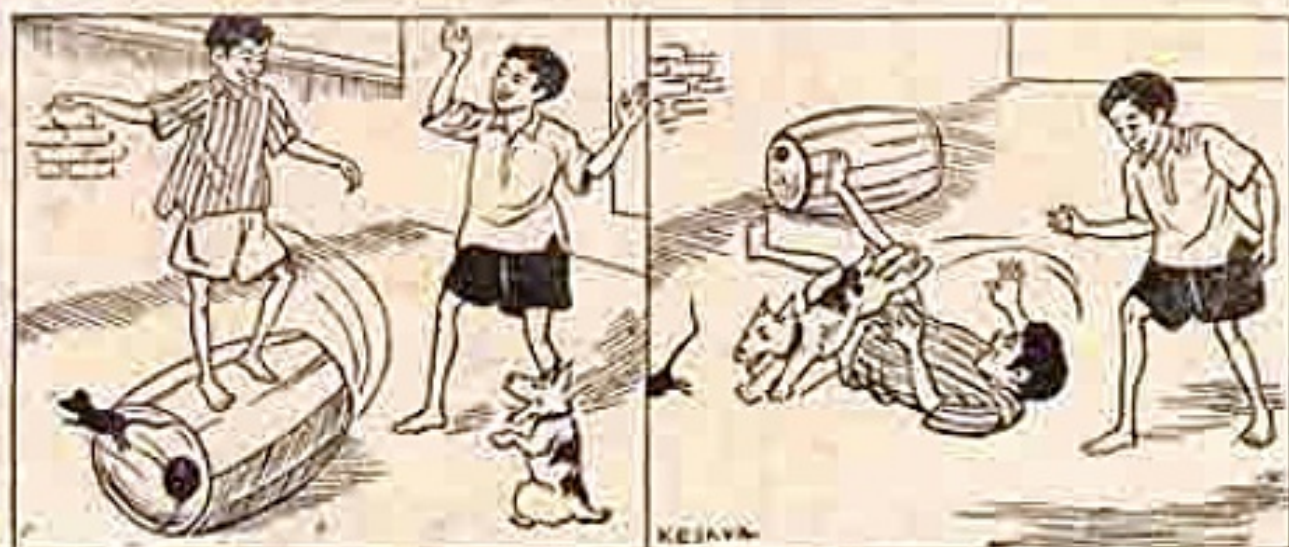
वास को बिना नीचे गिरे पीपे को ढकेलता देख दास को ही नहीं, बल्कि 'टाइगर' को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। पर इन सबसे अधिक भय और आश्चर्य उस चूहे को हुआ, जिसने पीपे में अपना घर बना लिया था। ज्यों ही चूहा पीपे से बाहर निकला, तो 'टाइगर' वास के ऊपर से कूदकर उसका पीछा करने लगा।

Printed by B. NAGI REDDI at the B. N. K. Press Ltd., Madras 26, and Published by him for Chandamama Publications, Madras 26. Controlling Editor: SRI 'CHAKRAPANI'

Photo by P. B. Khata

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

नहीं, देखो इधर !

प्रेषक
कैलाश, खड़गपुर

CHANDAMAMA (Hindi) June 1955 Regd. No. M. 5452

रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र — ७